आमुख

इस पुस्तक में १८ वार्ताओ का सग्रह है। ये वार्तायें अखिल भारतीय रेडियो के इलाहाबाद केन्द्र से सर्वश्री विश्वम्भरनाथ पाडे, इलाचन्द्र जोशी और रामचन्द्र टडन द्वारा प्रसारित की गई थी। इनमें भारत के सांस्कृतिक इतिहास पर प्रकाश डाला गया है।

विषय-सूची

१

विविधता में एकता

भारत एक लम्बा चौडा महान देश है, जो उत्तर से दक्षिण तक दो हज़ार मील लम्बा और पूरब से पश्चिम तक १९०० मील से ज्यादा चौडा है। इसका रकवा यरोप के रकवे से लगभग दो तिहाई है। यह इगलैंड से १४ गुना वडा और फ्रास और जर्मनी से छै गुने से ज्यादा वडा है। अपने इतने वडे फैलाव के कारण ही यह देश अजीवोगरीव विभिन्नताओं से भरा हुआ है। एक ओर हिमालय पर भयकर सर्दी है जिसकी मीलो ऊची चोटिया वारहो महीने वर्फ से ढकी रहती हैं और दूसरी तरफ कोंकण और कारोमडल की गरमी है जिसे वरदाश्त करना मुश्किल है। ज़मीन की ऊचाई एक जगह समुद्र की सतह के वरावर है तो दूसरी जगह इतनी ऊची हो गई है कि वहा किसी तरह की सब्ज़ी नही होती और वहां वादलो, मेघो और तूफानो की भी पहुच नही है। वर्षा अगर चेरापूजी में ४०० इच होती है तो जैसलमेर मे सिर्फ ५ इच। जलवायु की विभिन्नता के कारण फूल-पौधो और पशु-पक्षियो में भी वेहद फर्क है। लेकिन यह फर्क यही पर खत्म नही होता। भारत की आवादी कुल दुनिया की आवादी का पाचवा हिस्सा है यानी दुनिया के इन्सानो में हर पाचवा आदमी भारतवासी है। सम्यता के विभिन्न स्तरो को प्रकट करने वाले विभिन्न जातियो के लोग यहा वसते हैं जिनकी भाषा और रस्मोरिवाज, जिनके धार्मिक विश्वास और सस्कृति एक दूसरे से विल्कुल भिन्न हैं। भारतवर्ष में कम से कम सात तरह की ऐसी मानव जातिया रहती है जिनको शरीर-विज्ञान की दृष्टि से हम अलग कर सकते हैं। यहा कम से कम १४ तरह के विभिन्न प्रदेशो के लोग रहते हैं जो अपनी निज की भाषा वोलते है और अपना साहित्य पढते है। इस देश में कम से कम डेढ सौ तरह की वोलिया वोलने वाले लोग रहते हैं। इसके अलावा दुनिया के करीव-करीव सव प्रसिद्ध धर्म-मज़हव यहा प्रचलित हैं, जिनमें हरेक मज़हव के कम से कम दस-दस लाख अनुयायी हैं। सच पूछा जाय तो भारतवर्प तरह-तरह के धर्मो, तरह-तरह के रीति रिवाजो, तरह-तरह के सम्प्रदायो, तरह-तरह की संस्कृतियो, तरह-तरह के पन्थो,

तरह-तरह की बोलियो, तरह-तरह की मानव-जातियो और तरह-तरह की समाज व्यवस्थाओ का एक बहुत बडा मिलन-केन्द्र है।

सरसरी तौर पर देखने वाले लोग भारतीय जीवन और भारतीय भौगोलिक विभिन्नता को देखकर हैरान हो सकते हैं। लेकिन हमारी इस विभिन्नता के भीतर ही एक एकता है। हमें अपनी इस विभिन्नता में ही एकता दिखाई देती है। हमारी इस विभिन्नता से ही हमारी इस समष्टि की रचना हुई है। इसी विभिन्नता के रहस्य में ही सुबोधता छिपी हुई है। लेकिन बाहरी लोग हमारे जुदा-जुदा अगो को हमारी देह से अलग करके देखते है। यह तो वही बात हुई कि कोई अन्धा आदमी हाथी को छू कर उसके एक एक अग से उसकी कल्पना करे। भारतीय जीवन की अखडता को समझने के लिये हमें उसकी समन्वय की ताकत को समझना होगा। तभी हम यह समझ सकेंगे कि भारतीय जीवन किस तरह अपनी विभिन्नता को एकता का रूप दे सका और किस तरह उसने अपने जीवन में सम्पूर्णता का विकास किया। हमारी समस्त विभिन्नता के पीछे एक मौलिक एकता है। हमारी इस विभिन्नता ने इसीलिये हमें कमज़ोर करने के बजाय ताकतवर और समर्थ बनाया। इन्सानी नसलो के इतिहास के एक बडे जानकार विद्वान सर हर्बर्ट रिज़ले ने लिखा है कि 'भारत में समाज का और धर्मो का, भाषा का और रस्म-रिवाज़ो का, रीतियो का और नीतियो का जो साफ-साफ फर्क दिखाई देता है उन सब के पीछे एक निश्चित मौलिक एकता है, जिसने हिमालय से लेकर कन्या-कुमारी तक भारतीय जीवन को एक धागे में बाध रखा है।'

'भारतवर्ष' शब्द के पीछे एक गहरी ऐतिहासिक विशेषता है जो हमारी मौलिक एकता को ज़ाहिर करती है। यह एक बडा पुराना सिद्धान्त है कि बहुत सी चीजें एक नाम से तभी पुकारी जाती है जब उनके पीछे एकता की भावना हो। इसीलिये हमारे प्राचीन ऋषियो ने अनेक जातियो, भाषाओ और धर्मो के होते हुये भी इस देश को एक 'भारतवर्ष' के नाम से पुकारा। भारतवर्ष उसी तरह 'भरत' से बना है जिस तरह रोम 'रोमलस' से। ऋग्वेद सबसे पहले आर्य जाति के इस महान् नेता का ज़िक्र करता है। भारतीय इतिहास के उष.काल में भारतीय सस्कृति को इस महान् नेता ने अनेक सघर्षो और युद्धो के बाद निश्चित और व्यापक रूप दिया। 'ऐतरेय ब्राह्मण' नामक अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ में इस महान् भारतीय सम्राट् का विस्तृत वर्णन मिलता है। श्रीमद्भागवत में भी भरत को

'अधिराज' के नाम से पुकारा गया है। श्रीमद्भागवत के मुताविक भरत किरात, यवन, पौंड्र और उसी तरह की अनेक जातियो और कवीलो के 'राजाधिराज' थे। भरत अपने ज़माने की भारतीय शक्ति के साकार ऐक्य रूप थे। भरत हमारी उस ज़माने की सस्कृति और नव जागृति के प्रतीक थे। उस नव जागृति के पीछे हमारा उस समय का साहित्य, उस समय की सामाजिक सस्था, रीति-रिवाज, राजनीतिक पद्धतिया और जातीय अनुशासन थे। इन सव ने मिलकर एक नई सास्कृतिक एकता की वुनियाद डाली। एक पताका के नीचे सव धर्मो, सव जातियो, और सव सस्कृतियो के लोगो को इकट्ठा किया। उन्हें एक धागे में वाधा, लेकिन उन्हें इतनी आज़ादी दी कि वे अपने-अपने धर्म और सस्कृति की धाराओ को शक्तिशाली वनाते रहे और इस तरह देश की महान जीवन-धारा के साथ साथ अपनी इन धाराओ को मिलाकर सारे देश में व्यापक भारतीय सस्कृति का निर्माण करते रहे।

ऋग्वेद जैसे ग्रन्थ में, जो मानव उल्लेखो का सव से प्राचीन प्रमाण है, हमारे ऋषियो ने भारत की इसी व्यापक एकता का गम्भीर आह्वान किया है। उनमे सव से अच्छे ऋग्वेद के वे मन्त्र हैं जिनमें पजाव की विविध नदियो की प्रशसा की गई है, जिन नदियो के कारण देश में इतना व्यापार, इतनी सस्कृति और इतनी समृद्धि फैली। ऋग्वेद का यह मत्र है—

इम मे गगे यमुने सरस्वति,
शतुद्रि, स्तोम सुचिता, परुष्ण्या।
असिक्निया मरुद्वधे वितस्तयार्जी
कीये श्रणुह्या सुषोमया॥

एक वात साफ है कि इस मत्र में केवल पजाव का ही वर्णन है, किन्तु उस वक्त तक आर्यो के सामने जो भौगोलिक सीमायें थी वे साफ हैं। इन सीमाओ के अन्दर सिर्फ उत्तर भारत आता है। इस सारे क्षेत्र को वैदिक साहित्य में आर्यावर्त के नाम से पुकारा गया है। मेधातिथि ने भी उस समय के आर्यावर्त के सम्वन्ध में लिखा है—

आर्यावर्त्त पुण्यभूमि मध्ये विन्ध्यहिमालय।

अर्थात् आर्यावर्त की पुण्यभूमि विन्ध्य और हिमालय के वीच में है। जैसे-जैसे भारत में आर्यो की आवादी वढती गई वैसे-वैसे आर्यावर्त की सीमायें भी वढती

गई । यहां तक कि उसमें दक्षिणापथ या दक्षिण भारत भी शामिल हो गया । योग्य विद्वानो के अनुसार चारो वेदो के निर्माण में २४०० वर्ष लगे है । वाद के वैदिक साहित्य में सप्त-सिन्ध भावना को अधिक व्यापक रूप दिया गया है । ऋग्वेद में बढती हुई भौगोलिक सीमाओ को अकित करने वाली विविध नदियों के नाम भी शामिल कर लिये गये है ।

पौराणिक काल में बढी हुई भारत की सीमाओ का उल्लेख एक श्लोक में मिलता है —

गगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्म्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

पुराण के एक दूसरे श्लोक में भारत को सात पर्वतो का देश कहा है —

महेन्द्रो मलय सह्य शुक्तिमानृक्षपर्व्वत ।
विन्ध्यश्च पारिपत्रश्च सप्तैते कुलपर्व्वता ॥

और दुनिया में इस सर्वोत्तम भारत भूमि की तुलना स्वर्ग से की गई है —

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।

और भारत स्वर्ग के समान क्यो न हो ? तीन-तीन महासागर जिसके चरण पखारते हो, गगा और यमुना जिसकी जयमाल हों और हिमालय जिसका मुकुट हो !

भारतवर्ष का शुरू से अब तक का सारा इतिहास एक सुन्दर और सिलसिलेवार कहानी है। उसकी सारी अलग-अलग कडिया शरीर के अलग-अलग अगो की तरह एक दूसरे से जुडी हुई है । शुरू से अब तक इस देश ने जिन आदर्शो को अपने सामने रखा है उन सब में एक अखड एकता व्याप्त है । इस देश की यह अखड एकता ही भारत की असली और अमर आत्मा है। अपने इतिहास में अलग-अलग तरह से और कभी-कभी एक ही युग में कई परस्पर-विरोधी तरीको पर यह आत्मा अपने को प्रकट करती रही है। किन्तु उसकी एकता और अखडता इन सब विभिन्नताओ से ऊपर और उनसे कही अधिक महान् है । हमारे अलग-अलग

धर्मो, अलग-अलग सम्प्रदायो, सस्थाओ, उद्योग-धन्धो, कलाओ, चित्रकारियो, विद्याओ, फलसफो और दर्शन-शास्त्रो, सवके अन्दर व्याप्त होकर यही एकता उन सबको एक सुन्दर सर्वांगिक भारतीय जीवन के अगप्रत्यंग वनाये हुये है। हमारे इतिहास की जयो और पराजयो, हमारे सग्रामो, हमारी उम्मीदो, हमारी मायूसियो, सव के अन्दर वही एकता रमी हुई है।

भारत की इसी आत्मा ने द्रविड़ जाति से पहले के भारतवासियो, द्रविड़ों और उनके वाद के आर्यो, इन सव को मिला कर पुराने समय के सयुक्त भारतीय समाज की रचना की। इस मेल का पता हमें उस ज़माने के उन ऊंचे दर्शन-शास्त्रो, सुन्दर पदार्थो, मूर्तियो, और चित्रकारियो से मिलता है जो अभी तक हर भारत-वासी की आत्मा को उल्लास, उत्साह और गर्व से भर देती है। उस एकता की आत्मा राम और कृष्ण, महावीर और वुद्ध, चन्द्रगुप्त और अशोक, वाल्मीकि और व्यास के जीवन और उनके कारनामो में दिखाई देती है। शको और हूणो के हमलो की आधी ने इस सभ्यता की नदी को गदला किया, लेकिन जव उस तूफान की मौजो के थपेडे धीमे पडे तो गुप्त, सातवाहन और राजपूत राजो ने नदी के वहाव को ऐसे रजवहो में वाटा कि जिनसे जीवन की खेती सैराव हुई और समाजी खलियानो को अटाटूट भर देने वाली फसल पैदा हुई। सारनाथ और साची के टोप, बाघ और अजन्ता की तसवीरें, खजुराहो और भुवनेश्वर के मन्दिर, कालिदास और भवभूति के नाटक उस सुनहले ज़माने की जगमगाती यादगारें है। आगे चल कर भारत की इसी आत्मा ने सास्कृतिक समन्वय का और वढिया चमत्कार कर दिखाया। एक ओर पुराने हिन्दू धर्म में सम्प्रदायो, सिद्धान्तो, नामो और रूपो का रगारगी वाहुल्य-और दूसरी ओर इसलाम का कठोर एकेश्वरवाद, उसके शून्य देवालय, वेलौस पूजाविधि और परलोक की कपा देने वाली कल्पनायें। भारत की समन्वयात्मक आत्मा ने जो उच्च आध्यात्मिक समन्वय इन दोनो के मेल से पैदा किया उसके द्वारा अद्वितीय इमारतो और चित्रकारियो, कविताओ और संगीत, और इनसे भी वढकर प्रेमधर्म या मजहवेइश्क की वे अमर यादगारें खडी हो गई, जिन पर प्रत्येक भारतवासी को सच्चा गर्व हो सकता है।

इसके वाद पश्चिमी सभ्यता हमारी सभ्यता से टकराई। इस मुठभेड का नतीजा यह हुआ कि हमारे देश में नये विचारो और नई शक्तियो ने घर कर लिया। नये जीवन और नये विचारो के असर से एक नई कौम वनने लगी। उसने पश्चिमी

साम्राज्यवाद से टक्कर लेकर अपने देश को स्वतन्त्र किया और अब वह समाज के नये पुतले को रूप-रग दे रही है। इस पुतले में नई जान और नई ताकत है। इसमें एक नई एकता का अनुपम भाव है। कुदरत ने हमारे देश को पहाड़ो और समुद्रो के एक चौखटे में बाधा है। इस देश की धरती में उसने तरह-तरह की धन-दौलत को छितरा रखा है। आज हमें इन कुदरती नेमतो को सारे समाज के लिये यकसा उपयोग करना है। हमारे दिमाग में खयाल की नई-नई लड़ें गुथ रही है। बराबरी और इन्साफ की धारा वेगवती होकर बह रही है और समाज की नज़रो में आदमी की कद्र बढ रही है और इन्ही बुनियादो पर एक नये भारत का निर्माण हो रहा है।

बृहत्तर भारत

भारत आज इतिहास के एक युग की समाप्ति और दूसरे युग के सिंहद्वार पर खडा है । मानवीय इतिहास और मानवीय साधना के इन दो युगो के मध्य-स्थल पर खडे हो कर हम अपने सुदूर अतीत पर दृष्टि डाल सकते है और उस भविष्य की ओर निहार सकते है जिसका स्वरूप हमारी आखो के सामने ही गढा जा रहा है । अगर हम इतिहास के हज़ारो वर्ष पीछे के पन्नो पर निगाह डालें तो हम देखेंगे कि विश्व के सास्कृतिक विकास में भारत ने अत्यन्त महत्वपूर्ण योग दान दिया है । यही सभ्यता का अरुणोदय हुआ और यही से मनुष्य ने जीवन की अनन्त सघर्ष-यात्रा आरम्भ की । यही मानव ने सत्य का अनवरत अन्वेषण शुरू किया और यही मानवात्मा उज्ज्वल दीप्ति-पुज के समान जगमग होकर सारे ससार को प्रकाशित करने लगी ।

भारत सदा से मानव-सस्कृति की उच्चतम परिपाटी का सिरजनहार रहा है । गुज़रे हुये युगो से वह सदा अपनी सास्कृतिक दौलत खुले-हाथो एशियाई देशो को लुटाता रहा है । एशिया के हर देश के साथ उसका सास्कृतिक सम्बन्ध स्थापित था । अपने महान् भूतकाल मे उसने सारे ससार को नम्रता, अहिंसा, और ऊचे आदर्शो के उपहार भेंट किये । बौद्ध धर्म के सब से महान् प्रचारक "देवानाप्रिय" अशोक के शिलालेखो से पता चलता है कि पश्चिमी एशिया के पाच बडे नरेशो के साथ अशोक का मित्रता का सम्बन्ध था और पाटलिपुत्र और इन दरबारो में परस्पर पत्र-व्यवहार और वैज्ञानिको, दार्शनिको, धर्म-प्रचारको, साहित्यिको और कला-मर्मज्ञो का पारस्परिक आदान-प्रदान बराबर जारी था । पश्चिमी एशिया के ये पाचो नरेश थे — शामी-नरेश अन्तिओकस, मिस्री-नरेश टालेमी, मखदूनी-नरेश अन्तिगोनस, साइरीनी-नरेश मारगस और एपिरो-नरेश अलेक्जेंडर । अशोक के भेजे हुये बौद्ध-धर्म-प्रचारक उस समय पश्चिमी एशिया को पारकर मिस्र से कम से कम एक हजार मील आगे उत्तर-अफ्रीका के साइरीज नगर तक फैले हुये थे । इराक उस समय बौद्धमत का बडा केन्द्र था ।

इराक के सावी सम्प्रदाय का सस्थापक चालिडया का प्रसिद्ध मुनि वौदास्य वोधिसत्व ही का अवतार माना जाता था। शाम का समस्त प्रदेश वौद्धमठो से भरा हुआ था। यूनान, मिस्र, फिलस्तीन और इथोपिया के वनो और पर्वतो मे उन दिनो जगह-जगह वैदिक, जैन और वौद्धमतो के सहस्रो भारतीय दार्शनिक और महात्मा वसे हुये थे। वौद्ध भिक्खुओ और भारतीय कलाकारो के दल के दल दूर मैक्सिको पहुचे। वहा के प्रसिद्ध नगर गौटेमाला के खडहरो की खुदाइयो से जो अवशेष निकले हैं उनसे पता चला है कि गौटेमाला वास्तव में दो हजार वर्ष पहले का वौद्ध धर्म का एक महान् केन्द्र 'गौतमालय' था। भारत और ईरान का सम्वन्ध तो इतिहास के शुरू होने से भी पहले का है। ईरान शब्द 'आर्याना' का अपभ्रश है—'आर्याना' अर्थत् 'आर्यों का देश'। तुर्की के एक गाव वोगाजकुई की खुदाई से ३,५०० वर्ष पुरानी मूर्तिया निकली है जो निश्चित रूप से वैदिक है। इनमें मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य की मूर्तिया मुख्य है। यहा के उल्लेखो में अको का भी जिक्र मिलता है जैसे 'एक', 'त्रय', 'पज', 'सत्त', 'नव' आदि। तुर्की की प्राचीन सभ्यता पर हमें स्पष्ट वैदिक छाप दिखाई देती है। मिस्र के तैल-अल-अमर्न के अभिलेखो मे जिन राजाओ का नाम आता है उनमें ऋतुपर्ण, सुपर्ण, दशरथ, आहिताग्नि आदि मुख्य हैं। ईसा से १३८ वर्ष पूर्व उत्तरी अरव पर वैकुठनाथ नामक एक राजा राज करता था जिसकी जैनोविया नामक एक अत्यन्त साध्वी पत्नी थी। भारत से वापस लौटकर यूनानियो ने ऋग्वेद के देवता मित्र की पूजा को सारे यूरोप मे प्रचलित किया। फिदियन एडम्स नामक इतिहासलेखक का कहना है कि 'ईसा की पाचवी सदी तक इटली, पोलैंड, जर्मनी, फ्रास, वेल्जियम, हगरी, स्पेन, और इग्लिस्तान मे वैदिक देवता मित्र के वेशुमार मन्दिर थे। इगलिस्तान मे नार्दम्वरलैंड, राचेस्टर, आक्सफोर्ड, यार्क, मैनचेस्टर और लन्दन मे मित्र के मन्दिर ओर उसकी मूर्तिया भरी हुई थी। रोम ओर वाकी इटली मे मित्र के असख्य उपासक थे।'

पश्चिमी देशो की तुलना मे दक्षिण-पूर्व-एशिया पर भारतीय सस्कृति और सभ्यता, भारतीय धर्म और कला का इतना व्यापक प्रभाव पडा कि इतिहासकार इस समस्त भू-भाग को 'वृहत्तर भारत' के नाम से पुकारने लगे। हजरत ईसा से छै शताब्दी पूर्व और शायद उससे भी पहले से, जव से भारत का सिलसिलेवार इतिहास मिलता है, भारतीयो के अनेक समूह, पहले भौतिक लाभ की गरज से, ओर वाद मे सास्कृतिक सन्देश लेकर समुद्र पार करके दक्षिण-पूर्व-एशिया के

द्वीप-समूहो मे जाकर वस गये । प्राचीन भारतीय सस्कृति के ये प्रचारक निस्सन्देह साहसी नाविक थे । ये सम्भवत. कारोमडल के पूर्वी किनारे से, यानी प्राचीन कलिंग, प्राचीन तेलगाना, और खासकर कृष्णा और गोदावरी के दहाने से अपने वडे-वडे जहाजो में वैठ कर सुदूर-पूर्व की ओर रवाना हुये होगे । दक्षिण-पूर्व-एशिया में भारतवासियो के जो उपनिवेश वने, वे छै थे । सस्कृत ग्रन्थो में उन्हें—'यवदेश', 'चम्पा', 'कम्वुज', 'सायम', 'रमनय' और 'मलय' के नाम से पुकारा जाता है । 'यव' हिन्दचीन का, उत्तरी भाग था । 'चम्पा' वर्तमान अनाम था । कम्वुज' में वर्तमान कम्वोडिया तथा पूर्वी सायम का कुछ भाग शामिल था । सायम वर्तमान श्याम के उत्तरी भाग का नाम था । 'रमनय' में वर्तमान पेगु और वरमा का कुच्छ भाग शामिल था । मलय की स्थिति वर्तमान मलाया की तरह थी ।

इन भारतीय उपनिवेशो का इतिहास लगभग डेढ हज़ार वर्षों या उससे भी अधिक का है । यह ईसा की पहली शताव्दी से शुरू हो कर पन्द्रहवी शताव्दी तक चलता है । प्रवासी भारतीय जव सव से पहले इस द्वीप-समूह के किनारो पर जाकर वसे तो उस क्षेत्र का नाम उन्होने 'सुवर्ण' भूमि रखा । उन्होने मूल निवासियो को नये ज्ञान-विज्ञान, नये कला-कौशल और धर्म और सस्कृति के नये-नये विचारो का ज्ञान कराया । धीरे-धीरे भारत के सभी मत वौद्ध, शैव, वैष्णव और तत्रवाद इन उपनिवेशो में पहुचे । वुद्ध, शिव, चतुर्भुजी विष्णु, गणेश, कार्तिकेय और दुर्गा की पूजा के लिये मन्दिर वने । ईसा की चौथी पाचवी शताव्दी तक पाडुरगम, अमरावती और कम्वोज नामक वडे-वडे नगर वस गये । इन्ही नगरो मे राजवश कायम हुये जिन्होने अपने साम्राज्य फैलाये । इनमें सव से वडा राज्य शैलेन्द्र-साम्राज्य था । इसी को 'श्री विजय' का साम्राज्य कहते हैं । शैलेन्द्र-साम्राज्य के अन्तर्गत मलय, लका, सुमात्रा, जावा का कुछ भाग, वोर्नियो, सेलेवी, फिलिप्पाइन, फारमूसा का कुछ भाग और शायद कम्वोज और चम्पा भी थे । शैलेन्द्र-साम्राज्य वौद्ध-साम्राज्य था ।

शैलेन्द्र-साम्राज्य जव विखरा तो सत्ता कई शक्तिशाली राजवशो के हाथो में आई । कम्वोज के सस्कृत शिलालेखो से पता चलता है कि सातवी सदी के अन्त में वेद-वेदागो मे पारगत अगस्त्य नामक एक व्राह्मण भारत से कम्वोज आया । यशोमती नामक एक राजकन्या से उसका विवाह हुआ । मातृकुल के उत्तराधिकार के नियमों के अनुसार उनकी सन्तान 'नरेन्द्र वर्मन' उपाधि धारण कर राजगद्दी

इराक के साबी सम्प्रदाय का सस्थापक चाल्डिया का प्रसिद्ध मुनि बौदास्य बोधि-सत्व ही का अवतार माना जाता था। शाम का समस्त प्रदेश वौद्धमठों से भरा हुआ था। यूनान, मिस्र, फिलस्तीन और इयोपिया के वनो और पर्वतो में उन दिनो जगह-जगह वैदिक, जैन और वौद्धमतो के सहस्रो भारतीय दार्शनिक और महात्मा वसे हुये थे। वौद्ध भिक्खुओ और भारतीय कलाकारो के दल के दल दूर मैक्सिको पहुचे। वहा के प्रसिद्ध नगर गौटेमाला के खडहरों की खुदाइयो से जो अवशेष निकले है उनसे पता चला है कि गौटेमाला वास्तव में दो हजार वर्ष पहले का वौद्ध धर्म का एक महान् केन्द्र 'गौतमालय' था। भारत और ईरान का सम्वन्ध तो इतिहास के शुरू होने से भी पहले का है। ईरान शब्द 'आर्यानां' का अपभ्रंश है—'आर्याना' अर्थत् 'आर्यों का देश'। तुर्की के एक गाव वोग़ाजकुई की खुदाई से ३,५०० वर्ष पुरानी मूर्तिया निकली है जो निश्चित रूप से वैदिक है। इनमें मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य की मूर्तिया मुख्य है। यहा के उल्लेखो में अको का भी जिक्र मिलता है जैसे 'एक', 'त्रय', 'पज', 'सत्त', 'नव' आदि। तुर्की की प्राचीन सम्यता पर हमें स्पष्ट वैदिक छाप दिखाई देती है। मिस्र के तैल-अल-अमर्न के अभिलेखो में जिन राजाओ का नाम आता है उनमें ऋतुपर्ण, सुपर्ण, दशरथ, आहिताग्नि आदि मुख्य है। ईसा से १३८ वर्ष पूर्व उत्तरी अरव पर वैकुठनाथ नामक एक राजा राज करता था जिसकी जैनोविया नामक एक अत्यन्त साध्वी पत्नी थी। भारत से वापस लौटकर यूनानियो ने ऋग्वेद के देवता मित्र की पूजा को सारे यूरोप में प्रचलित किया। फिदियन एडम्स नामक इतिहासलेखक का कहना है कि 'ईसा की पाचवी सदी तक इटली, पोलैंड, जर्मनी, फ्रास, वेल्जियम, हगरी, स्पेन, और इग्लिस्तान में वैदिक देवता मित्र के वेशुमार मन्दिर थे। इगलिस्तान मे नार्दम्वरलैंड, राचेस्टर, आक्सफोर्ड, यार्क, मैनचेस्टर और लन्दन में मित्र के मन्दिर और उसकी मूर्तिया भरी हुई थी। रोम और वाकी इटली में मित्र के असख्य उपासक थे।'

पश्चिमी देशो की तुलना में दक्षिण-पूर्व-एशिया पर भारतीय सस्कृति और सम्यता, भारतीय धर्म और कला का इतना व्यापक प्रभाव पडा कि इतिहासकार इस समस्त भू-भाग को 'वृहत्तर भारत' के नाम से पुकारने लगे। हजरत ईसा से छै शताब्दी पूर्व और शायद उससे भी पहले से, जव से भारत का सिलसिलेवार इतिहास मिलता है, भारतीयों के अनेक समूह, पहले भौतिक लाभ की गरज से, और वाद मे सास्कृतिक सन्देश लेकर समुद्र पार करके दक्षिण-पूर्व-एशिया के

द्वीप-समूहो में जाकर वस गये । प्राचीन भारतीय सस्कृति के ये प्रचारक निस्सन्देह साहसी नाविक थे । ये सम्भवत कारोमडल के पूर्वी किनारे से, यानी प्राचीन कलिंग, प्राचीन तेलगाना, और खासकर कृष्णा और गोदावरी के दहाने से अपने वडे-वडे जहाज़ो में वैठ कर सुदूर-पूर्व की ओर रवाना हुये होगे । दक्षिण-पूर्व-एशिया में भारतवासियो के जो उपनिवेश वने, वे छै थे । सस्कृत ग्रन्थो में उन्हें—'यवदेश', 'चम्पा', 'कम्वुज', 'सायम', 'रमनय' और 'मलय' के नाम से पुकारा जाता है । 'यव' हिन्दचीन का उत्तरी भाग था । 'चम्पा' वर्तमान अनाम था । कम्वुज' में वर्तमान कम्बोडिया तथा पूर्वी सायम का कुछ भाग शामिल था । सायम वर्तमान श्याम के उत्तरी भाग का नाम था । 'रमनय' में वर्तमान पेगु और वरमा का कुच्छ भाग शामिल था । मलय की स्थिति वर्तमान मलाया की तरह थी ।

इन भारतीय उपनिवेशो का इतिहास लगभग डेढ हज़ार वर्षों या उससे भी अधिक का है । यह ईसा की पहली शताव्दी से शुरू होकर पन्द्रहवी शताव्दी तक चलता है । प्रवासी भारतीय जव सव से पहले इस द्वीप-समूह के किनारो पर जाकर वसे तो उस क्षेत्र का नाम उन्होने 'सुवर्ण' भूमि रखा । उन्होने मूल निवासियो को नये ज्ञान-विज्ञान, नये कला-कौशल और धर्म और सस्कृति के नये-नये विचारो का ज्ञान कराया । धीरे-धीरे भारत के सभी मत वौद्ध, शैव, वैष्णव और तन्त्रवाद इन उपनिवेशो में पहुचे । वुद्ध, शिव, चतुर्भुजी विष्णु, गणेश, कार्तिकेय और दुर्गा की पूजा के लिये मन्दिर वने । ईसा की चौथी पाचवी शताव्दी तक पाडुरगम, अमरावती और कम्वोज नामक वडे-वडे नगर वस गये । इन्ही नगरो में राजवश कायम हुये जिन्होने अपने साम्राज्य फैलाये । इनमे सव से वडा राज्य शैलेन्द्र-साम्राज्य था । इसी को 'श्री विजय' का साम्राज्य कहते है । शैलेन्द्र-साम्राज्य के अन्तर्गत मलय, लका, सुमात्रा, जावा का कुछ भाग, वोर्नियो, सेलेवी, फिलिप्पाइन, फारमूसा का कुछ भाग और शायद कम्वोज और चम्पा भी थे । शैलैन्द्र-साम्राज्य वौद्ध-साम्राज्य था ।

शैलेन्द्र-साम्राज्य जव विखरा तो सत्ता कई शक्तिशाली राजवशो के हाथो मे आई । कम्वोज के सस्कृत शिलालेखो से पता चलता है कि सातवी सदी के अन्त मे वेद-वेदागो में पारगत अगस्त्य नामक एक व्राह्मण भारत से कम्वोज आया । यशोमती नामक एक राजकन्या से उसका विवाह हुआ । मातृकुल के उत्तराधिकार के नियमो के अनुसार उनकी सन्तान 'नरेन्द्र वर्मन' उपाधि धारण कर राजगद्दी

की अधिकारी हुई । कम्बोज के नरेशो में जयवर्मन, श्रुतुवर्मन, यशोवर्मन, इन्द्र वर्मन, और सूर्यवर्मन वडे शक्तिशाली और प्रतापी थे । इनकी राजधानी विशाल अकोर सारे एशिया में प्रसिद्ध थी । दस लाख की आवादी वाला यह शहर कला-कौशल, व्यापार-वाणिज्य और सभ्यता और सस्कृति के लिये अपना सानी नही रखता था ।

पश्चिमी इतिहासकारो के अनुसार बृहत्तर भारत के इन उपनिवेशो ने भारत से सस्कृत और तमिल दोनों लिपिया सीखी । यहा पहुचकर शैव, वैष्णव और बौद्ध धर्म में एक सुन्दर समन्वय हुआ । भगवान बुद्ध को यहा भगवान शकर का छोटा भाई समझा जाता था । रामायण और महाभारत के महाकाव्य भी यहा थोडे वहुत परिवर्तनो के साथ पहुचे । कम्बोज में पातजलि की तुलना हजार फनो वाले शेषनाग से की गई है । अनेक शिलालेखो में सुश्रुत, मनु, और हरिवश का भी ज़िक्र मिलता है । शैलेन्द्र-साम्राज्य के वाद सायम का ब्राह्मण-राज्य तेज़ी से तरक्की करने लगा और उसकी राजधानी भजापहित दक्षिण-पूर्ण-एशिया की केन्द्र वनी ।

इन उपनिवेशो की निर्माण-कला पर भारत का सब से गहरा असर पडा। अकोर की शानदार इमारतें और बोरोबुदुर का सुन्दर मन्दिर ससार भर के लिये निर्माण के आश्चर्यजनक अवशेष है । प्रसिद्ध फ्रासीसी इतिहास-लेखक मोशिये ग्रूजे पूरब और पश्चिम के उन सभी देशो का वर्णन करते हुये, जिन्हें भारतीय सस्कृति ने प्रभावित किया, लिखता है "पूर्वी ईरान के ऊचे पठार में, मगोलिया और मचूरिया के सूखे बजरो में, चीन और जापान के सुसभ्य प्राचीन देशो में और हिन्द-चीन और मलय में, न केवल धर्म पर वल्कि कला और साहित्य पर भी, या एक शब्द म कहें, तो आत्मा की सभी बुलन्द चीज़ो पर, भारत ने अपनी ऊची सस्कृति की अमिट छाप छोडी है ।"

भारतीय समाज-व्यवस्था

प्राण-विज्ञान ने इस सचाई को साबित कर दिया है कि प्राणिमात्र के अन्दर प्रारम्भ से ही यह उत्कट प्रवृत्ति होती है कि वह जीवित रहे। हर प्राणी मौत और विनाश से भागता है। मनुष्य का रहन-सहन, खान-पान और प्रजोत्पत्ति की भावना, सब की जडे इसी प्रवृत्ति में है। इस से मिलती-जुलती मनुष्य में एक और प्रवृत्ति होती है जो पहली प्रवृत्ति से भी अधिक व्यापक है। यह प्रवृत्ति मनुष्य के अन्दर अपने कुटुम्ब, अपन कुल, अपने समुदाय और अपने समाज को सुरक्षित और अटूट रखने की प्रवृत्ति है। जाने या अनजाने मनुष्य इन्ही दोनो प्रवृत्तियो के सहारे बढता है, और इन्ही के द्वारा मानव-समाज अपनी समाज-व्यवस्था के हर अग को विकसित करता है और इन्ही प्रवृत्तियो की सहायता से उन्हें तरतीब देता है।

प्रकृति की विशाल योजना में पिता, माता और बालक तीनो मिलकर एक अविभक्त और अखड इकाई है। यह त्रिमूर्ति ही मानव-समाज का एक छोटा सा नमूना है। मानव की सामाजिक व्यवस्था के समस्त बुनियादी सिद्धान्त बीज रूप से इसी त्रिमूर्ति के अदर मौजूद है। मानव समाज की सारी सामाजिक आर्थिक और नैतिक व्यवस्था इसी एक छोटी सी बुनियाद पर खडी है। कुटुम्ब का बढते-बढते एक विशाल कबीले, कौम या जाति की शक्ल अख्तियार कर लेना केवल इसी त्रिमूर्ति की सख्या का बढते जाना है। इस में सन्देह नही कि आकार-प्रकार के बढ जाने से मानव-जीवन की पेचीदगिया बढ जाती है और हमारी सामाजिक समस्याओ की सख्या भी बहुत बढ जाती है। नई-नई परिस्थितिया, नई-नई शक्तिया, और परस्पर-विरोधी गिरोह और सस्थायें विशाल सामाजिक शरीर की अग बन जाती है। मनुष्य एक सामाजिक व्यवस्था के द्वारा इस परस्पर-विरोध को शान्त कर के समाज को सुचारु रूप से चलाने का प्रयत्न करता है। समाज-सचालन के इन नियमो को ही धर्म और व्यवस्था कह कर पुकारा जाता है।

20 M of I & B

प्राचीन भारत में समाज-व्यवस्था के लिये नियम बनाने का काम राजा नही, ऋषि और मुनि करते थे । जमाने के साथ-साथ इन नियमो और कानूनो के स्रोता भी वढते गये । इन स्रोतो में श्रुति, स्मृति और शिष्टाचार मुख्य थे । इनके अतिरिक्त राजकीय आज्ञायें, न्याय, मीमासा, नज़ीरे, स्थानीय रूढिया और परम्परायें कानूनी व्यवस्था की अग बन गईं । इन प्राचीन सामाजिक व्यवस्थाओ को 'धर्म शास्त्र' या 'धर्म सूत्र' के नाम से पुकारा जाता है । वैधानिक व्यवस्थाओ की इस उत्तरोत्तर वढती से ज़ाहिर होता है कि समाज की वढती हुई आवश्यकताओं और सामाजिक परिवर्तनो से भारतीय समाज के प्राचीन नेता पूरी तरह परिचित थे, और सामाजिक विधानो में सशोधन और परिवर्धन की आवश्यकता को वे पूरी तरह समझते थे । नये-नये परिवर्धनो को निश्चय ही देश के शिक्षित जनो ने पसन्द किया होगा । इसलिये ये नियम शिष्टाचार या सदाचार के नाम से प्रसिद्ध हुए । इन के अतिरिक्त स्मृतिकारो ने स्थानीय रूढियो को भी मान्य व्यवस्था के अन्तर्गत शामिल कर लिया । दूसरे शब्दो में समाज के चित्र-विचित्र नियमो को कानूनी मान लिया गया और उन का पालन करना समाज के लिये अनिवार्य कर दिया गया । उन के विरुद्ध आचरण करने पर समाज अभियुक्त को दड देता था । प्राचीन स्मृतिकारो को इस बात का ज्ञान था कि भारत जैसा विशाल देश अनेक सम्प्रदायो और उन के भिन्न-भिन्न आचार-विचारो का केन्द्र बनेगा, इसीलिये इन भारतीय स्मृतिकारो ने यह वात साफ करदी कि जो आचरण एक समुदाय या सम्प्रदाय के लिये मान्य होगा दूसरे सम्प्रदाय के लोग उस का पालन करने के लिय वाध्य न होगे । स्मृतिकारो ने इस वात को बिल्कुल साफ कर दिया है कि दाक्षिणात्यो के आचार-विचार का पालन दक्षिण के लोग करेगे और उत्तर के आचार-विचारो का पालन उत्तर भारत के लोग । देवल स्मृति के अनुसार केवल उन्ही आचार-विचारो का पालन करना चाहिये जो 'न्यायदृष्ट' और कल्याणप्रद हो—

यस्मिन् देशे य आचारो न्यायदृष्ट सुकल्पित ।
स तस्मिन्नेव कर्तव्यो न तु देशान्तरे स्मृत ॥

विषय के अनुसार ही व्यवस्था का नियम था और ये व्यवस्थायें समय और भौगोलिक परिस्थितियो के अनुसार ही दी जाती थी । इस तरह विविध स्मृतिकारो ने स्मृतियो की रचना के समय स्थानीय रीति-रिवाजो को ध्यान में रखा और ऐसे रीति-रिवाज मान्य समझे गये जिन का मूल 'धर्म' में था । भृगु

कहते है ' किसी भी देश, पुर, नगर, ग्राम आदि में जिस धर्म का भी पालन होता है, उस का उसी रूप में पालन करना चाहिये ।

यस्मिन् देशे, पुरे, ग्रामे, त्रैविध्ये नगरेऽपि वा ।
यो यत्र विहितो धर्मस्तं धर्मं न विचालयेत् ॥

आर्यों का जब इस देश में विस्तार हुआ तो यहा के मूल निवासियो की तुलना में उन की सख्या नही के बराबर थी । उन दिनो वे नाना वर्णो और उपवर्णो में बटे हुए नही थे, इसलिये एक सवृत दल के रूप में थे । यही कारण है कि उन दिनो, उन की शक्ति अपराजेय थी । किसी-किसी का मत है कि अनार्यो के ससर्ग से अपने को बचाने के लिये ही आर्यो ने वर्ण-व्यवस्था को स्वीकार किया । गुण और कर्म के अनुसार पहले ब्राह्मण और 'राजन्य' दो विशेष श्रेणियां बनी । किन्तु एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में जाने का रास्ता खुला हुआ था और इन में परस्पर विवाह भी होता था । शेष सब आर्य वैश्य थे और आर्येतर जातिया शूद्र । जो आर्येतर जातिया आर्य-सस्कृति में नही आईं ये सब 'निषाद' कहलाईं । आर्यो में सभी ने वेद के आधार को मान लिया था, ऐसी बात नही है । वेद-विरोधी व्रात्य आर्य भी थे, और वेद-विरोधी अनेक व्रात्यों को दल से निकाल कर शूद्र बना दिया गया था ।

धीरे-धीरे अनेक सामाजिक आचार-विचारो मे भी जातिभेद अपने को प्रकट करने लगा । कर्मानुसार बढई, रथकार, कैवर्त, नाविक, नाई, लुहार, कुम्हार आदि वृत्ति और व्यवसाय के अनुसार भेद होने लगा । समाज में जातिभेद प्रतिष्ठित होने पर भी भिन्न-भिन्न जातियो में विवाह-सम्बन्ध होता था । शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि महर्षि च्यवन ने राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या से विवाह किया था । महर्षि भृगु के पुत्र ऋचिक ने, महाभारत के अनुसार, राजा गाधि की परम सुन्दरी कन्या सत्यवती से विवाह किया था । दशरथ राजा की कन्या शान्ता के साथ ऋष्य शृंग ने विवाह किया था । पारस्कर गहसूत्र के काल में भी अनुलोम विवाह प्रचलित था । गौतम धर्म -सूत्र के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनो ही शूद्र कन्या से विवाह कर सकने थे, पर शूद्रा के विवाह में वैदिक मत्रो का उच्चारण विहित नही था । स्मृति के युग मे धीरे-धीरे यह प्रथा कम होती गई । मनु यद्यपि असवर्ण विवाह को अस्वीकार नही कर सके तथापि उन्होने इसकी तीव्र निन्दा की है । किन्तु मनु को भी यह बात सोचनी पडी कि असवर्ण पत्नी से उत्पन्न सन्तान

को सम्पत्ति में क्या अधिकार होगे और गुरु की असवर्ण पत्नियो का शिष्य लोग कैसे सम्मान करेगे ? पहले असवर्ण विवाह से उत्पन्न सन्तान पिता की ही जाति पाती थी। आर्यो के समाज में वीज अर्थात् पुरुष ही प्रधान समझा जाता था। आर्येतर समाज में कन्या अर्थात् क्षेत्र प्रधान था। हरिवश में लिखा है —

माता भस्त्रा पितु पुत्रो येन जात स एव स ।

यानी माता तो भस्त्रा अर्थात् चमडे की थैली मात्र है। पुत्र पिता का होता है। असवर्ण स्त्रिया सहधर्मिणी न हो सकती हो यह वात न थी। कात्यायन सहिता के अनुसार 'यज्ञ के लिये अग्निमथन का कार्य ब्राह्मण की सवर्णा स्त्री ही कर सकती है, किन्तु उसके अभाव में असवर्णा पत्नी भी यह कार्य कर सकती है।' मनु ने स्वय विचार किया है कि अधमयोनिजा कन्या अक्षमाला वसिष्ठ के साथ युक्त हो कर और तिर्यक् कन्या शारगी मदपाल ऋषि की परिणीता हो कर मान्या पदवी को प्राप्त हुई थी —

अक्षमाला वसिष्ठेन सयुक्ताधमयोनिजा ।
शारगी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ।

केवल अनुलोम ही नही, प्रतिलोम विवाह-पद्धति भी समाज में प्रचलित थी। शुक्राचार्य ब्राह्मण थे। उन की कन्या देवयानी ने क्षत्रिय राजा ययाति से विवाह किया था ।

धीरे-धीरे समाज जन्म से ही जाति को मानने लगा। वर्णाश्रम धर्म का लचीलापन जव कम होने लगा तो विज्ञजनो ने उसे आशका की दृष्टि से देखना शुरू किया। 'भविष्य पुराण' में वर्णाश्रम धर्म पर कठोर आक्रमण किया गया है। पुराणकार ने लिखा है —'जाति-जाति में और सम्प्रदाय-सम्प्रदाय में कोई भेद नही है। भेद न तो वाहर है और न भीतर। न सुख में, न ऐश्वर्य में, न आज्ञा में, न भय में, न वीर्य में, न आकृति में, न ज्ञान-दृष्टि में, न व्यापार में, न आयु में, न अग की पुष्टि में, न दुर्बलता में, न स्थिरता में, न चचलता में, न बुद्धि में, न वैराग्य में, न धर्म में, न पराक्रम में, न नैपुण्य में, न स्त्री-गर्भ में, न प्रेम में, न क्रुद में और न लोभ में ।

पुराणकारो ने आगे कहा है —"अति यत्न से सभी देवता मिल कर भी खोजें तो ब्राह्मण और शूद्र में कोई भेद न पावेंगे। चलना, फिरना, शरीर, वर्ण, केश,

सुख, दुख, रक्त, मास, मेद, अस्थि, रस इनमें सब समान है, फिर चार वर्णों का भेद कहां है ? केवट-कन्या के गर्भ से व्यास, चाण्डाल-कन्या के गर्भ से पराशर, शुकी के गर्भ से शुकदेव, उलूकी के गर्भ से कणाद, गणिका के गर्भ से वशिष्ठ और मण्डूकी के गर्भ से मुनिराज माण्डूक का जन्म है और ये सब शूद्रा और अन्त्यज माताओ के गर्भ से उत्पन्न ऋषि, जाति से नही, बल्कि तपस्या से, सिद्धि प्राप्त कर सके है ।

किन्तु देश के दुर्भाग्य से धीरे-धीरे समाज जाति-भेद के कठोर ब्रह्मपाश में बध गया। जाति-भेद के विरुद्ध निरन्तर युद्ध करने के बाद बौद्धो ने भी पराजय स्वीकार की और जैनो ने भी जाति-प्रथा के साथ धीरे-धीरे समझौता कर लिया ।

ईसा से पाच शताब्दी पूर्व के स्मृतिकार बौधायन ने उत्तर भारत और दक्षिण भारत के रीति-रिवाजो के स्पष्ट अन्तर का उल्लेख किया है और दोनो को अपने अपने रीति-रिवाजों के अनुसार आचरण करने की अनुमति दी है। बौधायन दक्षिण भारत के जिन पाच विशिष्ट रिवाजो का उल्लेख कर उन का पालन न्याय्य ठहराते है, वे रिवाज है—(१) अदीक्षित के साथ भोजन करना, (२) अपनी पत्नी के साथ भोजन करना, (३) बासी भात और भात की काजी खाना, (४) ममेरी बहिन के साथ विवाह करना (मातुलदुहितृगमनम्) , (५) फुफेरी बहिन के साथ विवाह करना (पितृष्वसृदुहितृगमनम्) ।

बौधायन के अनुसार उत्तर भारत के पाच रिवाज थे—(१) ऊन का व्यापार करना, (२) मदिरा-पान, (३) जिन के ऊपर और नीचे दोनो जबड़ो में दात हो, ऐसे पशु बेचना, (४) अस्त्र-शस्त्र बेचना, और (५) समुद्र-यात्रा करना। मनु के अनुसार पति को चाहिये कि न तो वह पत्नी के साथ सहभोज करे और न उसे खाते हुए, छीकते हुए, जम्हाई लेते हुए, या आराम से बैठे हुए देखे।

दाक्षिणात्यो के ममेरी और फुफेरी बहिनो के साथ विवाह को बौधायन ने न्याय्य स्वीकार किया था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार यदि कोई व्यक्ति ममेरी बहिन से विवाह करता है, तो उसे प्रायश्चित के रूप में चान्द्रायण व्रत करना चाहिये। किन्तु ऋग्वेद सहिता से विदित होता है कि इन विवाहो को वैदिक स्वीकृति थी। ऋग्वेद सहिता में इन्द्र को सम्बोधन कर के कहा गया है—हे इन्द्र ! तू यज्ञ की बलि

उसी तरह सहर्ष स्वीकार कर जिस तरह कोई मामा और बुआ की लडकी को विवाह में स्वीकार करता है।' कृष्ण ने अपनी ममेरी बहिन रुक्मिणी और फुफेरी बहिन मित्रविन्दा से विवाह किया था। इस तरह हम देखते हैं कि प्रचलित रिवाजों को बहुधा स्वीकार किया गया है। नारद स्मृति में लिखा है 'प्रचलित रिवाज पवित्र समझी जाने वाली व्यवस्थाओ से भी ऊचे समझे जाने चाहियें।'

बारहवी शताब्दी तक जाति-भेद कट्टर रूप से समाज-व्यवस्था का अग बन गया। बसवेश्वर, नामदेव, तुकाराम, मुक्ताबाई, कबीर, दादू, नानक, चैतन्य सब ने जाति-भेद पर कठोर आक्रमण किया, किन्तु परिणाम केवल यह हुआ कि इन्हीं सन्तो के नाम पर सम्प्रदाय बन गये।

हिन्दुस्तान के मुसलमानो ने हिन्दुओ की ही तरह अपना सामाजिक सगठन किया। बाहर के मुसलमानो में कोई जात-पात नहीं, मगर यहा के मुसलमानो ने हिन्दुओ की तरह ही अपनी अलग-अलग बिरादरिया बना ली। सैयदो की समता ब्राह्मणो से, मुगलों और पठानो की क्षत्रियो से, शेखो की वैश्यो से और बुनकरो और दीगर पेशेवालो की शूद्रो से होने लगी। ये फर्क न सिर्फ आर्थिक स्थिति या कामधन्धो की वजह से हो गये, बल्कि हिन्दुओ की तरह मुसलमानो की ये बिरादरियाँ पैदाइशी हो गईं। लोगो को अपनी ऊची बिरादरी पर अभिमान होने लगा। मुसलमान औरतो ने भी अपनी हिन्दू बहिनो का ही चलन अपनाया। शृगार, वेशभूषा, आभूषण, मिलने-जुलने, रोजमर्रा के व्यवहार सब बातो में हिन्दू तरीका बरतना शुरू किया। मुसलमानो के शादी-ब्याह बिल्कुल हिन्दू तरीके से होने लगे। निसबत, हल्दी, मेंहदी, तेल, मडवा, बरात, जलवा, कगन आदि सब रस्में मुसलमानो ने ज्यो की त्यो हिन्दुओ से ले ली। मुसलमानो ने मृतक के क्रियाकर्म में बहुत से हिन्दू रिवाज जैसे तीजा, दसवा आदि अपना लिये। इस के अलावा गर्भवती स्त्री का पँचमासा, सतमासा और बच्चे की छटी, खीर-चटाई, सालगिरह, मुडन, कनछेदन हिन्दू मुसलमान दोनों एक तरह से मनाने लगे।

पुराने जमाने में जो ईसाई इस देश में आकर दक्षिण भारत में बसे उन में भी जातिभेद है। दक्षिण भारत के बहुत से गिरजो में अन्त्यज ईसाई प्रवेश नहीं कर सकते थे। पोप पन्द्रहवें ग्रिगरी ने यह व्यवस्था की थी कि भारतीय चर्चों में जातिभेद

माना जा सकता है। रोमन कैथालिको में हिन्दुओ की ही भाति वाल-विधवा का विवाह नही होता था।

किसी भी समाज-व्यवस्था में नारी का प्रधान स्थान है। वैदिक काल में नारियो को समस्त अधिकार प्राप्त थे, नारी के आचरण पर ही वश-शुद्धि निर्भर थी। प्राचीन व्यवस्थाकारो ने स्त्रियो के प्रति काफी उदारता दिखाई है। अत्रि सहिता में लिखा है—'यदि स्त्री स्वेच्छा से कुपथगामी नही होती, वलात्कार से होती है तव तो वह निर्दोष है ही। वह त्याज्य तो एकदम नही है। स्कद पुराण में कहा है कि 'स्रोत से नदी और ऋतु-स्राव से स्त्री शुद्ध होती है।' वौधायन स्मृति में लिखा है कि 'स्त्रियो की पवित्रता अतुलनीय है। कोई उन्हे अपवित्र नहीं कर सकता। प्रति मास का ऋतुस्राव उन का सारा पाप धो देता है।' किन्तु धीरे धीरे स्त्रियो के प्रति उदारता का यह भाव समाप्त हो गया और जाति-मूलक समाज-व्यवस्था ने उन्हें हर तरह शिकजे में कस दिया।

इस जाति-भेद का परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओ ने अपनी जाति व्यवस्था में चार हजार से अधिक जाति-भेद के खाने वना लिये, जिन से वाहर निकलना तो आसान था किन्तु भीतर आना आसान न था। जव तक जाति-भेद की प्रथा इस देश की समाज-व्यवस्था में कठोरता से प्रतिष्ठित नही हुई थी, तव, तक वाहर से आये हुए यवन, हूण, शक, कुशन, जाट, गूजर, आभीर और राजपूत सव समाज में ग्रहीत होकर हिन्दू समाज के अग वनते गये, किन्तु वाद में समाज में यह ग्राह्यता न रही।

नई प्रगति के इस युग में राजा, राममोहनराय, स्वामी दयानन्द और महात्मा गाधी के प्रयत्नों से भारतीय समाज को लचीला वनाने के जवर्दस्त प्रयत्न शुरू हुए। पश्चिम के वैज्ञानिक युग ने भी समाज के वन्धनो को जीर्ण किया है। आज समाज के अन्दर क्रान्ति और नव-निर्माण की स्पष्ट हलचल दिखाई दे रही है।

४

भारतीय दर्शन

भारतीय दर्शन को समझने के लिये हमें दर्शन शब्द का वास्तविक अर्थ समझना चाहिये। जिस से देखा जाय उसे 'दर्शन' कहते हैं। जिस शास्त्र अथवा विज्ञान के द्वारा लौकिक या पारलौकिक तत्वो का यथार्थ ज्ञान हो सके वही 'दर्शन' है। भारतीय दर्शन का उद्देश्य प्रधान तथा आत्मतत्व का निरूपण ही है। प्रश्न उठता है कि 'आत्मा' तो ऐसा कोई पदार्थ नही जिसे हम अपनी आखों से देख सकें, तब उस का दर्शन कैसे हो सकता है? इस गुत्थी को सुलझाते हुए, उपनिषद ने कहा है —'श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यश्च' सुन कर युक्तियो के द्वारा उस पर मनन करना चाहिये, फिर निदिध्यासन के द्वारा मनन से प्राप्त ज्ञान को दृढ करना चाहिये। अगरेज़ी में दर्शन का पर्यायवाची शब्द है 'फिलासफी' (philosophy)। उस का शाब्दिक अर्थ होता है 'ज्ञान का प्रेम'। भारतीय दार्शनिक दर्शन को केवल ज्ञान या चिन्तन की वस्तु नही समझता, वरन् साक्षात्कार का विषय मानता है। मुण्डकोपनिषद् में लिखा है—'इस परम ज्ञान की प्राप्ति एक कठिन यात्रा है। इस के लिये यम, नियम, निरोध और ज्ञानेन्द्रियो तथा कर्मेन्द्रियो को स्थिर करने की ज़रूरत है। वैराग्य और तप के द्वारा ही मनुष्य ज्ञान के इस मार्ग में आगे बढ़ता है। ज्ञान की खोज करने वाले को मन की स्थिरता, आत्मनियमन, सन्यास, धैर्य, समाहार आदि गुण पहले प्राप्त करने चाहियें।' उपनिषदों के अनुसार ज्ञान दो प्रकार का है—'अपरा' और 'परा'। विषयी और विषय के आपसी सम्बन्धो पर विचार करने वाला और तर्क से प्राप्त होने वाला ज्ञान 'अपरा' है, जो इन्द्रियो के अनुभव पर आश्रित है। नाम और रूप के जाल में फसा हुआ, काल और दिक् से घिरा हुआ अस्थिर जगत ही इस ज्ञान का विषय है। दूसरे प्रकार का ज्ञान 'परा' कहलाता है। सत् तथा ब्रह्म इस का विषय है। ससार के बन्धनो से छुडाना इस का लक्ष्य है। आनन्द सत्ता का दर्शन ही इस का सार है। इस तरह ज्ञान में विषयी–विषय और ज्ञाता-ज्ञेय का भेद समाप्त होकर सिर्फ साक्षात्कार

रह जाता है। उस के बाद यह साक्षात्कार ज्ञान न रह कर तादात्म्य मे बदल जाता है —'ब्रह्म जानाति स ब्राह्मण'।

इस दर्शन-ज्ञान का लक्ष्य है यह अनुभव करना कि 'तत्वमसि' यानी 'वह तू है', 'अहं ब्रह्मास्मि' यानी 'मै ब्रह्म हूं' और 'स एवायमात्मा ब्रह्म' यानी 'निस्सन्देह यही आत्मा ब्रह्म है।' इस ज्ञान के पूर्ण अनुभव तक पहुचाने वाली यात्रा की चार चौकिया है। दूसरे शब्दो मे, मनुष्य को आत्म-प्राप्ति के लिये चेतना की चार अवस्थाओ से हो कर गुज़रना पडता है। ये अवस्थायें जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय है। पहली अवस्था में आत्मा विषयो के बन्धन में रहती है। दूसरी अवस्था में वह लगभग इन बन्धनो से छूट जाती है। तीसरी अवस्था में इन्द्रियो की चेष्टाये समाप्त हो जाती है। चौथी अवस्था में आत्मा आत्मा के सामने जा कर खडी होती है। दर्मियानी परदा फटकर अलग हो जाता है और आत्मा 'तादात्म्य' प्राप्त करती है।

उपनिषदो के अनुसार केवल ज्ञान के जरिये ही श्रेय मिल सकता है और पाप-नाश किया जा सकता है। इस विकारी जगत को ही ब्रह्म समझना, एक में अनेक को देखना ही असत् का उत्पादक है। ब्रह्म और आत्मा की दो धुरियो पर ही उपनिषदो का दर्शन घूमता है। बृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार ब्रह्म के दो रूप है—मूर्त्त और अमूर्त्त, नाशवान और अविनाशी, स्थिर और अस्थिर, सत् और असत्, निष्प्रपच और सप्रपच। ब्रह्म के निष्प्रपच रूप के बारे मे गार्गी याज्ञवल्क्य से पूछती है—'हे याज्ञवल्क्य! वह जो आसमान के परे, ज़मीन के नीचे, दोनो के बीच मे है, जिसे लोग भूत, वर्तमान और भविष्य कहते है, वह बुना हुआ ताना-बाना सचमुच कहा है? याज्ञवल्क्य उत्तर देते है—'गार्गी! उस को विद्वान लोग 'अक्षर' कहते है। वह न स्थूल है, न सूक्ष्म, न लम्बा है न छोटा, न रंगमय है और न जलमय, न उस मे परछाईं है और न अंधेरा। वह अनासक्त, अव्यक्त, प्राणहीन, रसहीन, दृष्टिहीन, कर्णहीन और वाग्हीन है। उस अक्षर को कोई नही देख पाता और वह सब को देखता है। इसी अक्षर के चारो ओर हे गार्गी! दिशाए ताने-बाने के समान फैली हुई है।'

ब्रह्म के सप्रपच पहलू का बृहदारण्यक उपनिषद में वर्णन है। उद्दालक के उत्तर में याज्ञवल्क्य कहते है — 'पचभूतो, आकाश, सूर्य, दिशाओ, चाद, तारो, अन्धकार, प्रकाश, सब देहो, मन, इन्द्रियो और बुद्धि मे यह रहता है। यही अन्तर्यामी है। सप्रपच और निष्प्रपच उसी एक सत्ता के दो रूप है। इसी ब्रह्म से सृष्टि

निकलती है। 'छान्दोग्य उपनिषद' मे लिखा है ' शुरू में यह सिर्फ एक था, कोई दूसरा नही था। इस ने इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊ और अपने को बढाऊ। इसी इच्छा से सष्टि उत्पन्न हुई—पहले तन्मात्रायें, फिर महाभूत, फिर जीवजन्तु, और फिर मनुष्य ।'

भारतीय दर्शन मुख्यतया दो श्रेणियो में बटे है—एक वैदिक और दूसरे अवैदिक। वैदिक दर्शन षड्दर्शनो के नाम से प्रख्यात है—वैशेपिक, न्याय, साख्य, योग, पूर्व मीमासा और उत्तर मीमासा अर्थात् वेदान्त। अवैदिक दर्शनो में चार्वाक, जैन और बौद्ध प्रमुख है। कुछ विद्वानो के मत के अनुसार भारतीय दर्शनो की कुल सख्या १६ है। वैशेपिक दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद है। वैशेपिक दर्शन के अनुसार निश्रेयस की प्राप्ति पदार्थो के ज्ञान द्वारा होती है। पदार्थ छै है—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय। न्याय दर्शन के प्रवर्त्तक महर्षि गौतम है। न्याय दर्शन में विवेच्य विषयो की अपेक्षा विवेचन और सत्योपलब्धि के साधनो पर अधिक ध्यान दिया गया है। साख्यदर्शन के प्रवर्त्तक महर्षि कपिल है। साख्य दर्शन के अनुसार आत्मा निर्गुण है। मन और बुद्धि के सयोग से आत्मा को सुख-दुख का ज्ञान होता है। योग दर्शन के प्रवर्त्तक महर्षि पतजलि है। चित्तवृत्तियो के निरोध को योग कहते है। योग के आठ अग है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। योग दर्शन में कर्म की विशद व्याख्या है। पूर्व मीमासा के आचार्य है महर्षि जैमिनि। पूर्व मीमासा दर्शन का मूल विषय धर्म की जिज्ञासा है। तथापि इस मे वेदो के पौरुषेय या अपौरुषेय होने तथा उन के अर्थ लगाने की विधि और यज्ञो का विवेचन है। उत्तर मीमासा अथवा वेदान्त मे तीन ग्रन्थ प्रामाणिक माने जाते है—उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्-भगवद्गीता। ब्रह्मसूत्र के कर्त्ता बादरायण या वेदव्यास है। चार्वाक दर्शन के प्रणेता हैं देवताओ के गुरु बृहस्पति। इस दर्शन के अनुसार आत्मा शरीर का ही विकार है। बौद्ध दर्शन का भी उदय साख्य की भाति दुख की निवृत्ति के लिये हुआ है। जैन दर्शन में न्याय, वैशेषिक और साख्य का-सा बहुपुरुषवाद है। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा मुक्त हो कर अपना पार्थक्य रखता है।

बादरायण के सूत्रो पर 'शारीरिक भाष्य' नामक टीका लिख कर शकराचार्य ने धर्म की बडी सेवा की है। इस से एक तो अद्वैतवाद की अमिट छाप दार्शनिक विचारो पर लगी, दूसरे दर्शन का अध्ययन सब के लिये सुलभ हो गया। शकर के अनुसार ईश्वर एक है। उस के अतिरिक्त कोई दूसरा नही। ईश्वर ही सृष्टि है।

ईश्वर से सृष्टि जुदा नही और सृष्टि से ईश्वर जुदा नही। शकर के ३०० वर्ष वाद रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत का प्रवर्तन किया। रामानुज के अनुसार ईश्वर के विना सृष्टि नही, और सृष्टि के विना ईश्वर नही, किन्तु सृष्टि ईश्वर नही और ईश्वर सृष्टि नही। तेरहवी शताव्दी में माधवाचार्य ने द्वैतवाद का प्रचार किया। द्वैतवाद के अनुसार ईश्वर के साथ कोई शामिल नही, इसलिये सृष्टि ईश्वर से विल्कुल जुदा है। द्वैताद्वैत दर्शन के प्रवर्त्तक निम्वार्काचार्य वारहवी शताव्दी में हुए। इस दर्शन के अनुसार ब्रह्म सार्वभौम होने के कारण सुखी है और जीव सीमित होने के कारण दु खी है। सृष्टि का सचालन करने वाले तीन तत्व है—जीव, प्रकृति और ईश्वर। सोलहवी शताव्दी में शुद्धाद्वैत के प्रवर्त्तक वल्लाभाचार्य हुए। शुद्धाद्वैत मत में माया को स्थान नही है, इसी से इस का नाम शुद्धाद्वैत पडा। इस दर्शन के अनुसार, ब्रह्म मे सत्, चित् और आनन्द तीनो गुण है और जीव मे आनन्द का तिरोभाव और सत् और चित् का आविर्भाव रहता है।

लगभग चौदहवी शताव्दी में भारतीय वेदान्त और इसलामी तसव्वुफ का समागम हुआ। सत्व, रजस और तमस की तरह प्रकृति मे तसव्वुफ भी 'इदराक' अर्थात् सत्व, 'कुदरत' अर्थात् रजस और 'शहवतो गजव' अर्थात् तमस ये तीन तत्व वतलाता है। तसव्वुफ के अनुसार आदमी सत् और असत् के वीच में पुल वाधता है। आत्मा में सत्ता के सारे गुण एक हो जाते है, इसी लिये उस के द्वारा वहुत्व में फसा हुआ एक अपने एकत्व के वारे मे सचेत हो जाता है। जिस मनुष्य में इस एकत्व के ज्ञान का उदय हो जाता है वह 'इनसाने कामिल' अथवा 'परमहस' कहलाता है।

इस प्रकार भारतीय दर्शन मे हमें न्याय दर्शन से ले कर वेदान्त और तसव्वुफ तक सत्, चित् तथा आनन्द का पूरा-पूरा ज्ञान हो जाता है और 'सच्चिदानन्द ब्रह्म की पूरी अनुभूति हो जाती है।

५

धार्मिक समन्वय

धर्म, मजहव, रिलीजन, पन्थ, मार्ग आदि सव शब्दो का लगभग एक ही अर्थ है। धर्म, 'धृ' धातु से वना है, जिसका अर्थ है धारण करना या सभालना। जिससे यह ससार सभला रहे उसी का नाम धर्म है। मजहव, पन्थ और मार्ग तीनो का अर्थ है 'रास्ता'। इस ससार में मनुष्य को जिस रास्ते पर चलना चाहिये, जो उनके कल्याण का रास्ता है उसी का नाम 'मजहव' है। 'रिलीजन' जिस धातु से वना है उसका अर्थ है वाधना। जो चीज़ मानवता को वाध कर रखती है, उसे टुकडे-टुकडे होने से वचाती है, उसी का नाम रिलीजन है।

अगर हम ऋग्वेद, जेन्द अवेस्ता, त्रिपिटक, इजील, जैनसूत्र और कुरान को वरावर-वरावर रख कर ध्यान से पढे तो हमें इन सव धर्मग्रन्थो में आश्चर्य-जनक समानता दिखायी देगी। ऋग्वेद की ऋचायें ज्यो-की-त्यो जेन्द अवेस्ता में पायी जाती है। वेद, स्मृति, अवेस्ता, वौद्ध और जैन ग्रन्थ, इजील के नये और पुराने अहदनामे और कुरान इन सव के भाव और विचार इतने मिलते-जुलते है कि साफ मालूम होने लगता है कि इन सव का एक ही स्रोत और उद्गम है।

मनु के दस लक्षणो और मूसा की दस आज्ञाओ में गहरी समानता है— किसी की हिंसा न करना, सच वोलना, चोरी न करना, साफ रहना और अपनी इन्द्रियो को वश में रखना आदि। मूसा ने कहा है किसी की जान न लेना, झूठी गवाही न देना, चोरी न करना, अपने पडौसी की किसी वस्तु की इच्छा न करना, व्यभिचार न करना आदि। वुद्ध ने जिन पाच नेक कामो पर ज़ोर दिया है वे ये है किसी के प्राण न लेना, झूठी वात न कहना, धोखे से या वलात् किसी की चीज़ न लेना, शराव या मादक चीज़ों का प्रयोग न करना, और व्यभिचार न करना। जैन सूत्रो ने लिखा है हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, किसी का माल हडप जाना इन पाच पापो से वचना, यही सच्चा व्रत है। वुद्ध ने भिक्षुओ के लिये दस शीलों की आज्ञा दी है। पतजलि ने अपने योग सूत्रो में इन्ही में से पाच को यम और

पाच को नियम वर्ना दिया है । ठीक यही आदेश महात्मा जरथुस्त्र और हज़रत ईसा के उपदेशो और कुरान मजीद में मिलेंगे ।

प्रश्न उठता है कि यदि मनुष्य मात्र के लिये एक ही धर्म है और सब धर्म-प्रवर्तको ने एक ही तत्व का उपदेश किया है, तो फिर धर्मों में इतनी भिन्नता कैसे हुई ? वास्तव में सब धर्मों की शिक्षा मे दो तरह की बातें होती है । एक तो वह जो धर्मों का तत्व और उनका सार है । दूसरी वह, जिससे उन धर्मों का बाहरी रूप सजाया गया है । पहली मुख्य और दूसरी गौण है । पहली को धर्मतत्व का और दूसरी को विधि-विधान का नाम दिया गया है । वास्तव में धर्मों में जो कुछ भिन्नता दिखायी देती है वह धर्म तत्व की नही, नियमो और विधि-विधान की भिन्नता है, मूल की नही शाखाओ की, वास्तविकता की नही बाह्याचार की, आत्मा की नही शरीर की, और इस विभिन्नता का होना अनिवार्य था । धर्म का लक्ष्य मानव-समाज का कल्याण है । परन्तु प्रत्येक देश और प्रत्येक काल में मनुष्य-समाज की अवस्था और परिस्थिति न तो कभी एक-सी हुई, और न हो सकती है । इसलिये जिस धर्म का आविर्भाव जिस युग में और जिस परिस्थिति मे हुआ, उसी तरह के नियम और विधि-विधान भी उस धर्म में स्वीकार कर लिये गये ।

किन्तु लोगो ने धर्मतत्व को गौण और विधि-विधान को मुख्य धर्म समझ लिया, जिससे मानव-जाति की एकता का सूत्र टुकडे-टुकडे हो गया। लोगो के अनेक वश हो गये, अनेक देश हो गये, अगणित जातिया हो गई, और हर जाति एक दूसरी से हाथापाई करने लगी । वर्ण और भाषाओ के अतिरिक्त लोगो में अमीर-गरीब, स्वामी-सेवक, ऊच-नीच आदि अगणित भेद-भाव बन गये । लोग एक-दूसरे से पृथक् होते गये और एक दूसरे से घृणा करने लगे । किन्तु इन अगणित भेदो के होते हुये भी, ससार के धर्म-प्रवर्तको ने हमें बताया कि हम एक-दूसरे से प्रेम कर सकते हैं । पैगम्बरो और अवतारो ने हमें बताया कि एक ऐसा सूत्र है जिससे बिछुडी हुई मानव-जातिया फिर से एक हो सकती हैं । और वह सूत्र—ईश्वरोपासना का पवित्र सूत्र है । दुनिया के सन्तो ने हमें बताया कि तुम कितने ही अलग-अलग क्यो न हो गये हो तुम्हारे लिये अलग-अलग परमात्मा नही हो सकते । तुम सब एक ही परमपिता के बन्दे हो और तुम सब की वन्दना और भक्ति के लिये एक ही उपास्य देव की चौखट है । ससार के महात्माओ ने हमें उपदेश दिया

कि यह ईश्वरीय सम्बन्ध तुम्हारे समस्त पार्थिव झगडो को मिटा देगा और तब तुम अनुभव करोगे कि सारा ससार तुम्हारा है, सारा मानव-समाज तुम्हारा परिवार है और तुम सब एक ही परम पिता की सन्तान हो।

यदि हम भारतवर्ष के लिखे और बेलिखे इतिहास पर दृष्टि डालें तो हम देखेंगे कि आर्य अपने फैलाव के जमाने में उत्तर-पश्चिम की घाटियो से आगे बढकर सब से पहले पजाब की नदियो के किनारे अपनी बस्तिया बसाते है, फिर आगे बढ कर वे गगा, यमुना, सरस्वती की वादियो में फैल जाते है। उत्तरी भारत में इनकी समाजे और राज कायम होते है। आर्यों और भारत के पुराने निवासियो मे सग्राम होते है। दोनो के आचार-विचार, रहन-सहन, धर्म-सिद्धान्त सब जुदा-जुदा थे। लेकिन अन्त मे आर्य, द्रविड, नाग और मुडा सब एक दूसरे में घुल-मिल गये। दोनो के धार्मिक समन्वय से एक नये धर्म और दोनो के सास्कृतिक समन्वय से एक नई सस्कृति की दागबेल पडी। वैदिक त्रिमूर्ति मित्र, वरुण और इन्द्र के साथ-साथ दुर्गा, शिव और विष्णु को भी देवताओ में प्रमख स्थान मिला। द्रविड और आर्यो के हरि और हर को मिला कर एक नये 'हरिहर' देवता का सृजन हुआ। इस समन्वयात्मक धर्म की खूबी यह थी कि इसमें सभ्यता की दो धारायें इस तरह से मिल गयी जैसे गगा और यमुना। आर्यो की निगाह दुनिया के बाहरी रूप-रग पर मोहित थी—धन-दौलत और दूध-पूत की चाह इनकी तबियतो को गुदगुदाती थी। ये मनचले बहादुर और लडाके लोग सच्चाई और निडरता को मनुष्य का वास्तविक गुण मानते थे। गल्लाबानो की जिन्दगी बसर करते थे। दिल चोचाल थे। साहस बढा हुआ था। ये न देवताओ से डरते थे और न मनुष्यो से दबते थे। हसमुख, खुले-दिल और आजाद थे। देवी-देवताओ के भजन और गीत बनाते और गाते थे। इनकी भाषा लचकदार और रसीली थी। इनके विचारो में गहराई और दिलेरी थी।

हिन्दुस्तान के पुराने निवासी खेती का धन्धा करते थे। इनके मिजाज मे नरमी और जमाने के थप्पड सहने की आदत थी। इस दु ख भरी दुनिया से मुहमोड आखें अन्दर की सैर की तरफ झुकी थी। आवागमन के चक्कर से छुटकारा पाने में मनुष्य का कल्याण समझते थे। सगीत की अनोखी धुनो के ये माहिर थे।

इन दोनो जातियो के धार्मिक सम्मिलन से जो समन्वयात्मक धर्म पैदा हुआ, उसका परछावा वेदो और ब्राह्मण ग्रन्थो में दिखायी देता है। वर्णाश्रम धर्म

पर इस नये समन्वयात्मक समाज की रचना हुई। अयोध्या और हस्तिनापुर इस समन्वय के गहवारे थे। राम और कृष्ण, जिन्हें आज भी हम प्रेम और भक्ति के साथ याद करते है इस नये समन्वयात्मक धर्म के आदर्श थे। इस नये धर्म की कोख से अध्यात्म और दर्शन के वे जवाहर निकले जो उपनिषदो के अमर उपदेशो में जमा है और जिनकी ज्योति से अब तक हमारे दिलो में रोशनी है। डेढ दो हजार वर्षों तक धर्म की यह मिलन-धारा उमग और आवेश से बहती रही। इसकी चाल मध्यम पडी और इसका निर्मल जल गन्दा होने लगा। महाभारत के भयानक सग्राम ने इस धारा को बिल्कुल रोक दिया। पुरानी समाजे ज़माने की टक्करो मे घिरा चुकी थी और भारत नई धार्मिक क्रान्ति के लिये तैयार था।

महावीर और गौतम बुद्ध ने पुरानी दुनिया को पलट दिया और दुनिया को धर्म के नये सन्देश दिये। पहले प्रवर्तक-धर्म का दौर था अब निवर्तक-धर्म का दौर शुरू हुआ। ईसा से ६०० वर्ष पहले वैदिक धर्म की बुनियादो पर नये धर्म की इमारत बननी शुरू हुई। इसके हर खड में नये पुराने धर्म का मेल था। इस जमाने मे मौर्यो, सातवाहनो और गुप्तो के साम्राज्य कायम हुये। हूण और शक, कुशान और बाख्त्री, जाट और गूजर सब ने यहा पनाह ली। इस सारे जमाने में धर्म, दर्शन और कला का वह अभूतपूर्व समन्वय हुआ जिसकी आब और ताब अब भी हमारी आखो को चौधियाती है। अजन्ता की तस्वीरो, एलोरा के मन्दिरो, साची और सारनाथ, भरहुत और अमरावती की मूर्त्तियो और अशोक की लाटो से एक समन्वयात्मक धर्म की प्रतिध्वनि निकलती थी। उस युग के गुणी, कलावन्त और पडित चीन से मिस्र तक अपना जवाब नही रखते थे। दर्शन, इतिहास, विज्ञान और धर्म के ऐसे धुरन्धर पडित पैदा हुए, जिनके गुणो का डका आज दिन तक दुनिया मे बजता है। पर दुनिया का कायदा है ज्वार के बाद भाटा और उत्थान के बाद पतन। सातवी सदी ईसवी तक जातपात के भेद इतने बढ गये और कट्टर हो गये कि समाज मे शक्ति बाकी न रही। मतो के बखेडो और कर्मकाड के जजाल से आदमी घबरा उठे। बौद्ध और जैन, शैव, शाक्त और वैष्णव पुजारी एक दूसरे के वैरी हो गये। इतिहास ने हिन्दू सभ्यता का वर्क पलट दिया और इस देश में एक नये इसलामी दौर की शुरुआत हुई। नये कबीलो, नये धर्म और नई सभ्यता का भारत मे दाखिला हुआ। हिन्दुस्तान में इसलाम को फैलाने वाले इतने बादशाह और फौजी कमानदार नही थे जितने दरवेश, सूफी और मस्त कलन्दर थे, जिन्हे राजदरबारो से सरोकार न था। ये अल्लाह वाले प्रेम के मतवाले, गरीबो और

दीन-दुखियो के साथी और हमदर्द थे। अव तक जितनी कौमें भारत में आई थी उनका धर्म कुछ महत्व न रखता था। इसलिए उन्होने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया लेकिन इसलाम की हैसियत इनसे विल्कुल अलग थी। इसलाम के सिद्धात, उसके पूजा-पाठ के तरीके, कानून, रस्म और रिवाज खास तरह के थे। यह आसान नही था कि इसलाम दूसरे धर्म में घुलमिल जाता और उसके प्रभाव को स्वीकार करता। लेकिन भारतवर्ष की मिट्टी में ही मेलजोल का गुण है। यह कैसे हो सकता था कि दो धर्म इस देश में एक साथ रहे और उनमें समन्वय न हो।

हिन्दू साधु-सन्तो और मुसलमान सूफी-दरवेशो ने आत्मा की गहराई में गोता लगाकर एक नया मजहवे इश्क, प्रेम-धर्म, ढूढ निकाला और कुल हिन्दुस्तान को भाईचारे के रिश्तो से वाध दिया। इनके दिलो मे कैसी सफाई और हिम्मत थी। गोलकुडा के सुल्तान मुहम्मदअली कुतुवशाह, जो अकवर के हमअसर थे, यो वेधडक वयान करते हैं

कुफ्र रीति क्या और इसलाम रीति,
हर एक रीति म प्रेम का राज है।

कवीर, नानक, रैदास, दादू, तुकाराम, मुईनुद्दीन, वावा फरीद मुलूकदास, पल्टू दास, रज्जव और सैकडो हिन्दू-मुसलमान साधुओ और फकीरो ने धार्मिक समन्वय के इन विचारो को फैलाया। इस समन्वयात्मक धर्मवृत्ति से वे जज्वे पैदा हुए जिन्हो ने हिन्दुस्तान में कुछ दिनो के लिए दुई को मिटा दिया।

अठारहवी सदी के पूरे होते-होते इस धार्मिक समन्वय ने भी दम तोडा। धार्मिक समन्वय के इतिहास के तीन दौर समाप्त हो चुके थे। उन्नीसवी सदी ने चौथे दौर का डौल डाला। आज हम इतिहास के इसी दौर में से गुजर रहे है, लेकिन अभी तो मजिल की पहली सीढियो पर ही है। समाजी जिन्दगी में एक इन्कलाव है। जात-पात का जोर घट रहा है। कवीलो और फिरको का वटवारा तो गायव ही हो गया। आज कौन शरीफ है कौन रजील। समाज और राज मे इज्जत पाने के लिए आज न ब्राह्मण, क्षत्री होने की जरूरत है और न सैयद, पठान होने की। जन्म और खान्दान से अब कोई ऊच-नीच नही वनता। बरावरी और सर्वधर्म-समभाव की एक नई लहर चल रही है। स्त्रियों और

पुरुषो सब में बराबरी की तलब है। रहने-सहने के तरीके बदल रहे हैं। यूरोप की विद्याओ ने एशियाई इल्मो की जगह ले ली है। सोचने के ढग अब हम गौतम और कण्व, वाल्मीकि और व्यास से नही, बल्कि कांट, हीगल, फ्रायड और मार्क्स से सीखते हैं। हम मनु और इब्नसीना की कतरब्योंत करते हैं, एक नये बुद्धिवादी वैज्ञानिक धर्म का हम स्वप्न देखते हैं। भारत के अनुरूप यह एक आशाप्रद बात है कि पूर्व और पश्चिम के दार्शनिक समन्वय की हलचल शुरू हो चुकी है। इसके महान् प्रणेता थे रवीन्द्रनाथ और गाधी। अभी उस समन्वय को साकार रूप नही मिला, किन्तु भारत की समन्वयात्मक प्रवृत्तिया उसे साकार रूप देकर रहेगी।

६

हमारा मविधान

अनुपम त्याग, तपस्या और सतत परिश्रम के बाद हमारा महान भारत देश स्वतन्त्र हुआ। इस देश के इतिहास में ही नही, सारे ससार के इतिहास में यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। सदियो की गुलामी से मुक्त होकर भारत आज स्वतन्त्रता की स्वस्थ और सुखद वायु में सास ले रहा है। देश के प्रतिनिधियो ने एक मत से अपने लिये लोकतन्त्रात्मक गणराज्य तैयार किया, जो कश्मीर मे कन्याकुमारी तक और सौराष्ट्र से कामरूप तक फैला हुआ है। हमारे प्राचीन इतिहास में गणराज्यो का यथेष्ट उल्लेख मिलता है, पर वे गणराज्य छोटे-छोटे राज्य थे। उनका विस्तार बहुत कम था, उनका राज्य-क्षेत्रफल कुछ वर्गमीलो तक ही सीमित था और वे बहुत करके एक दूसरे से सबधित नही रहते थे। जब कोई शक्तिशाली योद्धा चक्रवर्ती हो जाता था, तो उसका आधिपत्य तो मान लिया जाता था, पर लोग अपना जीवन अपनी ही रीति पर चलाते जाते थे। भारत के इतिहास में यह पहला अवसर है कि जब यह सारा देश सविधान के एक सूत्र मे बध कर, एक शासन के अधीन होकर रहेगा। यहा अनेक भाषाए बोली जाती है। अनेक धर्मों के अनुयायी यहा बसते है। सबके अपने-अपने उज्ज्वल और गौरवपूर्ण इतिहास है। तो भी सबने एक होकर, एक गणराज्य में एक लोकतन्त्र के अधीन रह कर अपनी उन्नति करने का निश्चय किया। यह एक ऐसी घटना है जिसका उदाहरण ससार के इतिहास में शायद ही मिले। भाषा के ही कारण यूरोप के देश छिन्न-भिन्न पडे है। उनमें अनेकानेक युद्ध हुए है और भावी युद्धो के लिये भी भीषण तैयारिया चल रही है। जिन देशो का शासन एक सूत्र में बधा हुआ है वहा के रहने वाले भी अपनी-अपनी भाषाओ का आग्रह नही छोड पा रहे। स्विट्जरलैंड जैसे देश में, जो भारत के केवल एक प्रदेश के बराबर है, तीन-तीन राष्ट्र-भाषाए व्यवहार में लाई जाती हैं। धर्म के इतने झगडे आज भी चलते है कि कोई देश किसी दूसरे देश के साथ मिल कर रहना पसन्द नही करता। ऐसी अवस्था में भारत में यह चमत्कार हुआ है

कि हम सर्व-सम्मति से एक सविधान वना सके। अपने इतिहास में भारत कभी भी एक शासन-सूत्र में नही वधा। अगरेजी राज्य काल की ५६२ रियासते भी भारत गणराज्य में शामिल हो गई है, और भारत का जो सविधान वना है, उसके अन्तर्गत उनका भी शासन अन्य प्रदेशो की तरह चल रहा है। यह एक ऐसी घटना है, जिसे भावी इतिहासकार चमत्कार के नाम से पुकारेगे।

२६ नवम्वर सन् १९४९ को विधाननिर्मात्री परिषद द्वारा भारत का यह सविधान मजूर किया गया। इसे परिषद द्वारा भारतवासियो ने स्वय अपने को समर्पित किया। इस सविधान के अतर्गत २६ जनवरी सन् १९५० से भारत एक स्वतत्र, लोकशाही गणराज्य वन गया और यह प्रतिज्ञा की कि 'वह अपने सव नागरिको के लिये सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, भाषण, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतत्रता तथा दरजे और अवसर की समानता सुरक्षित रखेगा और व्यक्ति का सम्मान और राष्ट्र की एकता का आश्वासन देते हुए उन सव में वन्धुभाव वढावेगा।'

भारत का सविधान एक लम्वा दस्तावेज है। इसमे ३९५ धारायें और ८ पूर्तिया यानी फेहरिस्ते है, और शायद दुनिया के समस्त राष्ट्रो के सविधानो से यह सवसे लम्वा है। किन्तु केवल सविधान से ही सच्चे अर्थो में देश और राष्ट्र की सच्ची सेवा नही हो सकती। सविधान तो एक प्रकार का नियम मात्र है, और वह तभी काम दे सकता है जव उसके सचालक सुधारक और सच्चे सेवक हो। सविधान के जनक ने विधान-निर्मात्री परिषद् में सविधान की अन्तिम स्वीकृति के समय वडी मार्मिक वात कही थी। उनके शव्द है 'सविधान कितना ही अच्छा क्यो न हो, यदि उसे अमल में लाने वाले अच्छे न हो तो वह निश्चय ही अच्छा सावित न होगा। सविधान का अमल सविधान की रचना पर ही पूरी तरह निर्भर नही करता। सविधान तो सिर्फ राज्य के अवयव वना देता है जैसे, विधान सभा, लोक सभा, न्यायालय आदि। जिस शक्ति पर राज्य के इन अवयवो का सचालन निर्भर है वह है जनता और जनता द्वारा कायम की हुई राजनीतिक पार्टिया। यदि ये राजनीतिक पार्टिया अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये वैधानिक तरीके अमल में लायेंगी तो सविधान सफलता के साथ चलेगा और यदि ये विशृंखल क्रान्तिकारी तरीका अपनायेगी तो सविधान की असफलता के लिये किसी फरिश्ते की पेशीनगोई की जरूरत नही है।'

भारत के सविधान की विशेषता यह है कि उसने भविष्य में सविधान में सशोधन करने का जनता का अधिकार नही छीना है, जैसा कि कनाडा के सविधान में किया गया है, और न उसने सविधान के सशोधको को अमरीका और आस्ट्रेलिया की तरह असाधारण शर्तो के मातहत किया है। सशोधन की विधि सविधान की धारा ३६८ में दी गई है। कुछ खास अपवादो को छोडकर, आमतौर पर यदि पार्लियामेंट की दोनो सभाओ में कोई बिल पेश किया जाय और कुल सदस्यो के बहुमत तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यो के दो-तिहाई मतो से वह पास हो, तो सविधान में सशोधन किया जा सकता है। ये सशोधन बहुत व्यापक परिवर्तन करने वाले भी हो सकते है।

सविधान के अनुसार भारत एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है। धर्म-निरपेक्ष राज्य से यह अभिप्राय है कि धर्म का क्षेत्र और राज्य का क्षेत्र दोनो अलग-अलग है। धर्म-सापेक्ष राज्यो में राज्य का एक विशिष्ट धर्म होता है और उसी धर्म के अनुयायियो को राज्य कुछ विशेष सुविधायें प्रदान करता है। हमारे सविधान के अनुसार धर्म प्रत्येक नागरिक का व्यक्तिगत विषय है, जो जिस धर्म को चाहे स्वीकार करे अथवा उसका प्रचार करे, राज्य उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप उस समय तक नही करेगा जब तक सार्वजनिक शान्ति भग होने का अदेशा न हो।

भारतवर्ष कई राज्यो का देश है, इसलिये इसका ढाचा सघीय है। देश के प्रशासन के दो अग है, एक केन्द्रीय और दूसरा राज्यो का। सघीय सविधान के अनुसार देश कई राज्यो से मिलकर बनता है, इसलिये उसकी सरकार और प्रशासन दो भागो में विभक्त होते है। दोनो सरकारे अपने अपने क्षेत्र में सत्तायुक्त होती है और साथ साथ काम करती है। राज्यो को 'क', 'ख', 'ग', 'घ', इन चार स्वशासित इकाइयो में विभक्त करके उन्हे एक सघ बनाया गया है। अमरीका की भाति भारत के राज्यो को अपना सविधान बनाने का अधिकार नही है।

भारतीय सविधान के पाचवे अनुच्छेद में नागरिकता का उल्लेख है। भारत का नागरिक होने के लिये तीन शर्तें हैं (१) जो भारत राज्य में जन्मा हो या (२) जिसके जनको में से कोई भारत राज्य-क्षेत्र में जन्मा हो और/या (३) जो प्रारम्भ से ही ठीक पहले कम से कम पाच वर्ष तक भारत राज्य क्षेत्र में सामान्यतया निवासी रहा हो। सविधान द्वारा नागरिको को कुछ मूल अधिकार

दिये गये है जैसे—समता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, सस्कृति और शिक्षा का अधिकार, सपत्ति का अधिकार और सांविधानिक उपचारो का अधिकार ।

हमारे सविधान मे इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि जनता के अधिक कमज़ोर व पिछडे हुये वर्गों और हिस्सो के हित राज्य द्वारा सुरक्षित रहे और उनकी विशेष चिन्ता रखी जाय । सविधान की धारा ४६ में कहा गया है कि 'राज्य प्रजा के कमजोर हिस्सो के और खासकर परिगणित जातियो तथा परिगणित कवीलो के तालीमी और आर्थिक हितो को विशेष सावधानी से वढायेगा तथा सामाजिक अन्याय और हर तरह के शोषण से उनकी रक्षा करेगा ।'

जाति, धर्म, नस्ल, लिंग आदि के भेद के विना सवकी समानता का सिद्धात हमारे सविधान का बुनियादी सिद्धात है । स्त्रियो और वच्चो के विषय में एक और भी अपवाद है । धारा ४६ में ये वर्ग विशेष चिंता और सामाजिक अन्याय तथा शोषण से सरक्षण पाने के अधिकारी माने गये है । इसका अर्थ यह है कि राज्य स्त्रियो को शिक्षा, नौकरी आदि में विशेष सुविधायें दे सकता है । सामाजिक क्षेत्र में हमारे सविधान ने क्रातिकारी कदम उठाये हैं । साप्रदायिकता और अस्पृश्यता को उसने मिटा दिया है और जाति, धर्म या लिंग भेद को न मानकर उसने सवकी समानता ज़ाहिर की है ।

सविधान ने यद्यपि हिन्दी को भारत की राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार किया है, किन्तु प्रादेशिक भाषाओ को भी ऊचा स्थान दिया गया है । प्रादेशिक भाषाओ को सविधान समृद्ध और सम्पन्न देखना चाहता है । व्यावहारिक दृष्टि से उसने १५ वर्ष तक अगरेज़ी का परित्याग न करने का निर्णय किया है । सविधान के अनुच्छेद ३९, ४१, ४२, ४३, ४६, ४७ और ४८ में आर्थिक विषयो पर प्रकाश डाला गया है । उनका आशय यह है कि सव नागरिको को आजीविका के साधन उपलव्ध हो सके । राष्ट्रीय सम्पत्ति का इस अनुपात से वितरण हो कि जिससे अधिक से अधिक व्यक्तियो को लाभ प्राप्त हो सके, समान परिश्रम के लिये समान वेतन की व्यवस्था हो । प्रौढ श्रमिको को सरक्षण एव १३ वर्ष तक के वालक-वालिकाओ की नि शुल्क शिक्षा की भी व्यवस्था है । ३८ वे अनुच्छेद के अनुसार राज्य भारत में एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था कायम करने का प्रयत्न करेगा, जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय पर आधारित होगी ।

भारत के सविधान की विशेपता यह है कि उसने भविष्य में सविधान में सशोधन करने का जनता का अधिकार नही छीना है, जैसा कि कनाडा के सविधान में किया गया है, और न उसने सविधान के सशोधको को अमरीका और आस्ट्रेलिया की तरह असाधारण शर्तों के मातहत किया है। सशोवन की विधि सविधान की धारा ३६८ मे दी गई है। कुछ खास अपवादो को छोडकर, आमतौर पर यदि पार्लियामेंट की दोनो सभाओ में कोई विल पेश किया जाय और कुल सदस्यो के वहुमत तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यो के दो-तिहाई मतो से वह पास हो, तो सविधान में सशोधन किया जा सकता है। ये सशोधन वहुत व्यापक परिवर्तन करने वाले भी हो सकते है।

सविधान के अनुसार भारत एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है। धर्म-निरपेक्ष राज्य से यह अभिप्राय है कि धर्म का क्षेत्र और राज्य का क्षेत्र दोनो अलग-अलग है। धर्म-सापेक्ष राज्यो में राज्य का एक विशिष्ट धर्म होता है और उसी धर्म के अनुयायियो को राज्य कुछ विशेष सुविधायें प्रदान करता है। हमारे सविधान के अनुसार धर्म *प्रत्येक नागरिक का व्यक्तिगत विषय है, जो जिस धर्म को चाहे स्वीकार करे* अथवा उसका प्रचार करे, राज्य उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप उस समय तक नही करेगा जव तक सार्वजनिक शान्ति भग होने का अदेशा न हो।

भारतवर्ष कई राज्यो का देश है, इसलिये इसका ढाचा सघीय है। देश के प्रशासन के दो अग है, एक केन्द्रीय और दूसरा राज्यो का। सघीय सविधान के अनुसार देश कई राज्यो से मिलकर वनता है, इसलिये उसकी सरकार और प्रशासन दो भागो में विभक्त होते है। दोनो सरकारे अपने अपने क्षेत्र में सत्तायुक्त होती है और साथ साथ काम करती है। राज्यो को 'क', 'ख', 'ग', 'घ', इन चार स्वशासित इकाइयो में विभक्त करके उन्हे एक सघ बनाया गया है। अमरीका की भाति भारत के राज्यो को अपना सविधान वनाने का अधिकार नही है।

भारतीय सविधान के पाचवे अनुच्छेद में नागरिकता का उल्लेख है। भारत का नागरिक होने के लिये तीन शर्तें हैं (१) जो भारत राज्य में जन्मा हो या (२) जिसके जनको में से कोई भारत राज्य-क्षेत्र में जन्मा हो और/या (३) जो प्रारम्भ से ही ठीक पहले कम से कम पाच वर्ष तक भारत राज्य क्षेत्र में सामान्यतया निवासी रहा हो। सविधान द्वारा नागरिको को कुछ मूल अधिकार

दिये गये है जैसे—समता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, सस्कृति और शिक्षा का अधिकार, सपत्ति का अधिकार और साविधानिक उपचारो का अधिकार ।

हमारे सविधान में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि जनता के अधिक कमज़ोर व पिछडे हुये वर्गो और हिस्सो के हित राज्य द्वारा सुरक्षित रहे और उनकी विशेष चिन्ता रखी जाय । सविधान की धारा ४६ में कहा गया है कि 'राज्य प्रजा के कमज़ोर हिस्सो के और खासकर परिगणित जातियो तथा परिगणित कवीलो के तालीमी और आर्थिक हितो को विशेष सावधानी से वढायेगा तथा सामाजिक अन्याय और हर तरह के शोषण से उनकी रक्षा करेगा ।'

जाति, धर्म, नस्ल, लिंग आदि के भेद के विना सवकी समानता का सिद्धात हमारे सविधान का बुनियादी सिद्धात है । स्त्रियो और वच्चो के विषय में एक और भी अपवाद है । धारा ४६ में ये वर्ग विशेष चिंता और सामाजिक अन्याय तथा शोषण से सरक्षण पाने के अधिकारी माने गये है । इसका अर्थ यह है कि राज्य स्त्रियो को शिक्षा, नौकरी आदि में विशेष सुविधायें दे सकता है । सामाजिक क्षेत्र में हमारे सविधान ने क्रातिकारी कदम उठाये है । साप्रदायिकता और अस्पृश्यता को उसने मिटा दिया है और जाति, धर्म या लिंग भेद को न मानकर उसने सवकी समानता ज़ाहिर की है ।

सविधान ने यद्यपि हिन्दी को भारत की राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार किया है, किन्तु प्रादेशिक भाषाओ को भी ऊचा स्थान दिया गया है । प्रादेशिक भाषाओ को सविधान समृद्ध और सम्पन्न देखना चाहता है । व्यावहारिक दृष्टि से उसने १५ वर्ष तक अगरेज़ी का परित्याग न करने का निर्णय किया है । सविधान के अनुच्छेद ३९, ४१, ४२, ४३, ४६, ४७ और ४८ में आर्थिक विषयो पर प्रकाश डाला गया है । उनका आशय यह है कि सव नागरिको को आजीविका के साधन उपलब्ध हो सके । राष्ट्रीय सम्पत्ति का इस अनुपात से वितरण हो कि जिससे अधिक से अधिक व्यक्तियो को लाभ प्राप्त हो सके, समान परिश्रम के लिये समान वेतन की व्यवस्था हो । प्रौढ श्रमिको को सरक्षण एव १३ वर्ष तक के वालक-वालिकाओं की नि शुल्क शिक्षा की भी व्यवस्था है। ३८ वे अनुच्छेद के अनुसार राज्य भारत मे एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था कायम करने का प्रयत्न करेगा, जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय पर आधारित होगी ।

७

वेद और वेदाग

मुख्य वेद तीन माने जाते हैं– ऋग्वेद, यजर्वेद और सामवेद। ये तीनो मिलकर त्रयी कहे जाते हैं। बाद में इन तीनो मे एक और वेद जुड गया जो अथर्ववेद के नाम से ख्यात हुआ। अथर्ववेद में मत्रो का तत्र-रूप अधिक विकसित हुआ है अर्थात् उनमे देवताओ की स्तुति की अपेक्षा मारण, मोहन, उच्चाटन, टोने-टोटके द्वारा रोगनिवारण आदि क्रियाओ की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। इस प्रकार कुल मिलाकर चार वेद हुए। कौटिल्य के जमाने में अथर्ववेद के साथ ही एक और वेद की गणना की जाती थी, जिसे इतिहास-वेद कहा जाता था। इतिहास-वेद के अन्तर्गत पुराण, इति-वृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र गिने जाते थे। पर बाद में इतिहास–वेद को प्रमुख वेदो से अलग कर दिया गया।

मूल वेदो की रचना कब हुई इस बात का कोई निश्चित प्रमाण नही पाया जाता। प्रारभ में वेदो के मत्र श्रुति-परम्परा से याद किये जाते थे। एक पीढी के लोगो से सुनकर दूसरी पीढी के लोग उन मत्रो को याद कर लेते थे और दूसरी पीढी के लोगो से तीसरी पीढी के लोग, इस प्रकार वश-परपरा या गुरु-शिष्य-परपरा द्वारा वे सब मत्र स्मृति-पटल में सुरक्षित रहते थे, पत्र में लिखे नही जाते थे। इसलिये वेदो को श्रुति कहते हैं, अर्थात् जिसे सुनकर याद किया जाता हो।

बाद में जब हमारे आदरणीय पुरखो, आर्य ऋषियो, ने एक विशिष्ट और वैज्ञानिक वर्णमाला का आविष्कार कर लिया तब श्रुति-परम्परा द्वारा सुरक्षित वे मत्र सहिताओ के रूप में लिपिबद्ध किये गए। लिखने के साथ ही उन्हे तीन मुख्य भा[illegible] बाट दिया गया—ऋक्, यजुष्, और साम। ऋक् या ऋचाए वे मत्र [illegible] या कविता के रूप में रचे गये थे, गद्य में रचे गये

मत्रो को यजुष् कहा गया और जिन पद्यो को गीत के रूप मे वाधा गया उन्हे साम कहा जाने लगा ।

वाद मे मूल वैदिक मत्रो के भावो की टीका या भाष्य के उद्देश्य से कुछ और गद्य रचनायें हुईं, जिन्हे वाह्मण कहा गया । व्राह्मणो के वाद कुछ वन-वासी ऋषि-मुनियो द्वारा आरण्यक नामक ग्रन्थो की रचना की गयी । जिन मुनियो ने जगलो मे एकातवास करके जीवन और मृत्यु, जीवात्मा और पर-मात्मा के रहस्य के सवध में गहरा चिन्तन किया था, उन्ही की रचनाए आरण्यक नाम से प्रसिद्ध हुई । हमारी कुछ प्रमुख उपनिषदें, जिनमें अध्यात्म-सम्वन्धी गहन ज्ञान की वाते भरी पडी है, इन्ही आरण्यको के अन्तर्गत आती है ।

जव ज्ञान का विस्तार वढता चला गया तव वेदो मे सवधित शब्दो का उच्चारण और उत्पत्ति, व्याकरण, छन्द-रचना और ज्योतिष आदि का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त कराने के उद्देश्य से वेदाग रचे गये । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद तथा शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ये छ वेदाग मिलकर अपरा विद्या कहलाते है, और जिस विद्या द्वारा ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त होता है (जैसे उपनिषद्), वह परा विद्या कहलाती है ।

हमारे पुराने पुरखे अर्थात् आर्य ऋषिगण वडे ही प्रभावशाली थे । मनष्य जाति की सभ्यता के इतिहास में उन्होने सव से पहिले साहित्य का निर्माण किया, और वह भी इतना सुन्दर कि आज हजारो वर्ष वाद भी वह साहित्य कला के पारखियो को वैसा ही आनन्द देता है जैसा वहुत पुराने जमाने की शिक्षित जनता को देता होगा । ऋग्वेद ससार का सवसे पुराना साहित्य-ग्रथ है । उसमे प्राचीन वैदिक यग के धार्मिक और सामाजिक जीवन का वहुत सुन्दर दिग्दर्शन मिलता है और आर्य द्रष्टाओ के गहरे ज्ञान के परचिय के अतिरिक्त उस यग के सावारण जनो की सहज अनुभूतियो का भी चित्रण उसमे पाया जाता है । प्रारम्भिक युग के जगली जीवन के वीच में सभ्य और सुसस्कृत जीवन का सगठन और स्थापना करने का काम कुछ आसान नही था । आज तो हम लोग हजारो वर्षो के अभ्यास के वाद सभ्य जीवन के आदी हो गये है । पर प्रारम्भ मे जिन लोगो ने वर्वर परिस्थितियो से लडकर, प्राकृतिक शक्तियो के साथ पारस्परिक आदान-प्रदान का समझौता करके, मनष्य के वाहरी व्यवहार

७

वेद और वेदाग

मुख्य वेद तीन माने जाते हैं– ऋग्वेद, यजर्वेद और सामवेद। ये तीनो मिलकर त्रयी कहे जाते हैं। वाद मे इन तीनो में एक और वेद जुड गया जो अथर्ववेद के नाम से स्यात हुआ। अथर्ववेद में मत्रो का तत्र-रूप अधिक विकसित हुआ है अर्थात् उनमें देवताओ की स्तुति की अपेक्षा मारण, मोहन, उच्चाटन, टोने-टोटके द्वारा रोगनिवारण आदि क्रियाओ की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। इस प्रकार कुल मिलाकर चार वेद हुए। कौटिल्य के जमाने में अथर्ववेद के साथ ही एक और वेद की गणना की जाती थी, जिसे इतिहास-वेद कहा जाता था। इतिहास-वेद के अन्तर्गत पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र गिने जाते थे। पर वाद में इतिहास–वेद को प्रमुख वेदो से अलग कर दिया गया।

मूल वेदो की रचना कव हुई इस बात का कोई निश्चित प्रमाण नही पाया जाता। प्रारभ में वेदो के मत्र श्रुति-परम्परा से याद किये जाते थे। एक पीढी के लोगो से सुनकर दूसरी पीढी के लोग उन मत्रो को याद कर लेते थे और दूसरी पीढी के लोगो से तीसरी पीढी के लोग, इस प्रकार वश-परपरा या गुरु-शिष्य-परपरा द्वारा वे सब मत्र स्मृति-पटल में सुरक्षित रहते थे, पत्र में लिखे नही जाते थे। इसलिये वेदो को श्रुति कहते है, अर्थात् जिसे सुनकर याद किया जाता हो।

वाद में जव हमारे आदरणीय पुरखो, आर्य ऋषियो, ने एक विशिष्ट और वैज्ञानिक वर्णमाला का आविष्कार कर लिया तव श्रुति-परम्परा द्वारा सुरक्षित वे मत्र सहिताओ के रूप में लिपिबद्ध किये गए। लिखने के साथ ही उन्हे तीन मुख्य भागो में वाट दिया गया—ऋक्, यजुष्, और साम। ऋक् या ऋचाए वे मत्र थे जो पद्य या कविता के रूप में रचे गये थे, गद्य में रचे गये

मत्रो को यजुष् कहा गया और जिन पद्यो को गीत के रूप मे वाधा गया उन्हे साम कहा जाने लगा ।

वाद मे मूल वैदिक मत्रो के भावो की टीका या भाष्य के उद्देश्य से कुछ और गद्य रचनायें हुईं, जिन्हे व्राह्मण कहा गया। व्राह्मणो के वाद कुछ वन-वासी ऋषि-मुनियो द्वारा आरण्यक नामक ग्रन्थो की रचना की गयी। जिन मुनियो ने जगलो मे एकातवास करके जीवन और मृत्यु, जीवात्मा और पर-मातमा के रहस्य के सवध में गहरा चिन्तन किया था, उन्ही की रचनाए आरण्यक नाम से प्रसिद्ध हुई । हमारी कुछ प्रमुख उपनिषदें, जिनमे अध्यात्म-सम्वन्धी गहन ज्ञान की वाते भरी पडी है, इन्ही आरण्यको के अन्तर्गत आती है ।

जव ज्ञान का विस्तार वढता चला गया तव वेदो से सवधित शव्दो का उच्चारण और उत्पत्ति, व्याकरण, छन्द-रचना और ज्योतिष आदि का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त कराने के उद्देश्य से वेदाग रचे गये। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद तथा शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ये छ वेदाग मिलकर अपरा विद्या कहलाते है, और जिस विद्या द्वारा व्रह्म-ज्ञान प्राप्त होता है (जैसे उपनिषद्), वह परा विद्या कहलाती है।

हमारे पुराने पुरखे अर्थात् आर्य ऋषिगण वडे ही प्रभावशाली थे। मनष्य जाति की सभ्यता के इतिहास में उन्होने सव से पहिले साहित्य का निर्माण किया, और वह भी इतना सुन्दर कि आज हजारो वर्ष वाद भी वह साहित्य कला के पारखियो को वैसा ही आनन्द देता है जैसा व्रहुत पुराने जमाने की शिक्षित जनता को देता होगा। ऋग्वेद ससार का सवसे पुराना साहित्य-ग्रथ है। उसमें प्राचीन वैदिक यग के धार्मिक और सामाजिक जीवन का वहुत सुन्दर दिग्दर्शन मिलता है और आर्य द्रष्टाओ के गहरे ज्ञान के परचिय के अतिरिक्त उस यग के साधारण जनो की सहज अनुभूतियो का भी चित्रण उसमें पाया जाता है । प्रारम्भिक युग के जगली जीवन के वीच में सभ्य और सुसस्कृत जीवन का सगठन और स्थापना करने का काम कुछ आसान नही था। आज तो हम लोग हजारो वर्षो के अभ्यास के वाद सभ्य जीवन के आदी हो गये है। पर प्रारम्भ में जिन लोगो ने वर्वर परिस्थितियो से लडकर, प्राकृतिक शक्तियो के साथ पारस्परिक आदान-प्रदान का समझौता करके, मनष्य के व्राहरी व्यवहार

और भीतरी भावनाओ से जगलीपन के सभी लक्षणो को मिटाकर एक उन्नत, सगठित और नियम-बद्ध समाज का निर्माण किया, उनके पराक्रम और प्रतिभा की जितनी भी प्रशसा की जाय, थोडी है ।

जब वैदिक मत्रो की रचना होने लगी तब तक हमारे पूर्वज काफी उन्नति कर चुके थे और सुन्दर, सुव्यवस्थित जीवन बिताने लगे थे । चूकि वे स्वस्थ अनुभूति से प्रेरित होने के कारण सहज प्राकृतिक जीवन बिताने के आदी थे, इसलिये विविध देवो के रूप में प्रकृति की उपासना करने में उन्हें बडा आनन्द मिलता था । विभिन्न प्राकृतिक शक्तिया ही उनके देवता थी । इन्द्र, अग्नि, वरुण, सूर्य, सोम आदि उस युग के सभी देवता प्रकृति की अलग-अलग शक्तियो के प्रतीक मात्र थे । उन देवताओ की उपासना में उन्हे ऐसे हर्ष और उल्लास का बोध होता था कि उनके सबध में वे सुन्दर सुन्दर कवितायें रच डालते थे । उषा के सबध में जैसी मनोमोहक कविताए ऋग्वेद-काल मे रची गयी वैसी बाद के साहित्य में बहुत कम देखने को मिलती है । उदाहरण के लिये उषा-सबधी एक कविता इस प्रकार है

"अधकार का कपडा उतार कर अरुण वर्ण उषा पूरब में अगडाइया ले रही है । पानी की लहरो की तरह उसका प्रकाश चारो ओर फैल रहा है । वर्षा-धारा की तरह उसकी किरणें फूट रही है । स्वर्ग के दो कपाटो को खोलती हुई वह कल्याणी तरुणी गृहिणी की तरह अपने सभी सोते हुए बच्चो को जगा रही है ।"

मरुद्गण, जो आधी-तूफान के प्रतीक है, एक कविता में बहुत ही सुन्दर रूप से प्रशसित हुए है

'मरुतो ! तुम्हारे कधो पर उज्जवल भाले चमक रहे है, तुम्हारे पावो में नूपुर झकृत हो रहे है और तुम्हारे वक्षो पर सोने के कवच झलझला रहे हैं । तुम्हारे रथो के नीचे निर्मल जल-लहरिया हिलोरें ले रही है, तुम्हारे हाथो में चमचमाती हुई बिजलिया कोध रही है और तुम्हारे सिरो पर सुनहरे मुकुट झलक रहे हैं । '

सृष्टि के गहन रहस्यो के चित्रण में भी हमारे वैदिक कवियो ने अपने आश्चर्यजनक कवित्व-कौशल का परिचय दिया है । ऋग्वेद का एक कवि कहता है

'प्रारम्भ में न सत् था न असत्, न आकाश था न उसका अनत विस्तार, न मृत्यु थी न अमृत । रात और दिन के बीच कोई व्यवधान नही था । केवल एक सनातन पुरुष अपने आप मे मग्न होकर विना सांस के सास ले रहा था । सर्वत्र अगम अधकार का साम्राज्य छाया हुआ था । सहसा एक दिन उस अधकार के गर्भ में निहित वीज में विस्फोट हुआ । उस वीज से सवसे पहले कामना और प्रेम की चिनगारी फूट निकली । कवियो ने उसके द्वारा अपने अतर में जड़ और चेतन के वीच के वधन का रहस्य अनभूत किया । यह तीखी और सर्वव्यापी ज्वालामयी जलन कहा से आयी ? पथ्वी से या स्वर्ग से? वह सृष्टि के सवसे ऊचे शिखर पर स्थित सर्वद्रष्टा ही वता सकता है, या सभवत. वह भी नही वता सकता ।'

इस कविता मे उपनिषदो के उस अपूर्व अध्यात्म ज्ञान की पूर्व झलक दिखायी देती है जिसके आगे आज भी कोई दूसरा ज्ञान ठहर नही पाता । हमारे ऋषिगण वडे आनन्दी जीव थे । केवल गभीर विषयो पर ही उन्होंने कविताए नही की है, वल्कि साधारण-साधारण विषयो और पशु-पक्षियो पर भी कविताए रची है। ऋग्वेद के एक ऋषि ने वरसाती मेंढको पर एक हास्यपूर्ण कविता रची है, जिसमें निरतर टर्र-टर्र करने वाले मेंढको की तुलना वेदपाठी ब्राह्मणो के साथ की गयी है ।

एक वैदिक कवि सासारिक मनष्यों की स्वार्थ-वुद्धि पर विवेचन करते हुए लिखता है . 'हम सभी मनुष्य विविध उपायो से अपने स्वार्थ की सिद्धि करते हैं । वढई किसी टूटी चीज़ को खोजता है, ताकि उसकी मरम्मत करके कुछ कमा सके । वैद्य लोग रोगियो को खोजते फिरते है और पुरोहित लोग यजमानो को । मै कविता करके धन कमाता हू, मेरा पिता वैद्य है और मेरी मा अनाज पीस कर अर्थ प्राप्त करती है । घोडा आसानी से चल सकने वाली गाडी को खोजता है, मौजी लोग हसी का साधन खोजते हैं, विवाहयोग्य युवतिया सुन्दर पुरुषो को खोजती है और मेंढक तलैया खोजता है । सभी को स्वार्थ की चिन्ता रहती है ।'

जीवन के छोटे-छोटे विषयो की अवज्ञा न करते हुए भी हमारे पूर्वज आर्य वडे ऊचे आदर्श अपने सामने रखते थे । राष्ट्र का आदर्श उनकी दृष्टि

में कितना वडा था इसका परिचय यजुर्वेद की एक प्रार्थना से मिलता है। ऋषि कहता है 'हे ब्रह्मन्! इस राष्ट्र में विद्या के तेज से सपन्न ब्राह्मण पैदा हो, शूर-वीर, नीरोग महारथी उत्पन्न हो, दुधार गायें, हृष्टपुष्ट वैल, तेज घोडे, रूपवती यवतिया, विजयी रथी, सभाओ में जाने योग्य वीर जवान जन्म ले। जव-जव हम कामना करें पानी वरसे, हमारी औषधिया फलो से भरपूर हो। हम सव योग और क्षेम से सपन्न हो।'

गिरयस्ते पर्वता हिमवतोऽरण्य ते पृथिवि स्योनमस्तु ॥

हे पथ्वी! तेरे सुन्दर हिमवान् पर्वत, हरे भरे मैदान और
घने जगल हमें सुख और सौन्दर्य प्रदान करे। तथास्तु।

महाकाव्य और पुराण

उपनिषद् युग के कुछ ही समय बाद से महाकाव्य युग का आरम्भ हुआ। इस देश का प्रथम महाकाव्य रामायण है, यह बात आज प्रायः सर्व-सम्मति से स्वीकृत हो चुकी है। वाल्मीकीय रामायण को पूरा पढ जाने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि उसकी कथा उपनिषद् युग से भी बहुत पहले से जन साधारण के बीच किसी न किसी रूप में प्रचलित थी। और यह भी बहुत सम्भव है कि वह परम्परा से प्रचलित लोक-कथा उपनिषद् युग मे या उसके पहले भी वाल्मीकि नाम के एक ऋषि और कवि द्वारा पद्य-बद्ध हो चुकी हो। पर उस मूल वाल्मीकीय रचना का आज कोई पता नही लगता। आज वाल्मीकीय रामायण के नाम से जो महाकाव्य प्रचलित है उसके प्रथम सस्करण की रचना सम्भवत· ५०० ई० पूर्व के आसपास हुई थी। २०० ई० पूर्व के आस-पास उसका नया सस्करण हुआ था, जिसमें बहुत-सी नयी बातें, नये भाव और नये आदर्श जोड दिये गये थे—ऐसा खोजी विद्वानो का कथन है। आज वाल्मीकीय रामायण का जो रूप है उसमें पूर्वोक्त द्वितीय संस्करण का बहुत-सा अश यथारूप सुरक्षित है।

हमारे यहा वाल्मीकि को आदिकवि माना जाता है। वैसे वैदिक काल के ऋषियो ने बहुत सुन्दर-सुन्दर कविताए की है, और उन वैदिक ऋषियो में से ही कोई एक आदिकवि रहा होगा। फिर भी वाल्मीकि मुनि के सम्बन्ध में जो यह अनुश्रुति प्रसिद्ध है कि आदिकवि वही थे इसका तात्पर्य केवल यह समझना चाहिए कि उन्होने एक नये ढग की कविता का प्रवर्तन किया जो क्या छद-सयोजन, क्या रूप-विधान और क्या शैली में वेदयुगीन कविता से एक दम भिन्न पडती थी। कहते हैं, किसी व्याध द्वारा एक प्रेम-मग्न क्रौंच-मिथुन में से एक की हत्या होते देख कर आदिकवि को जो शोक हुआ वही प्रथम श्लोक के रूप में फूट पडा। वह सुप्रसिद्ध श्लोक इस प्रकार है :

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी, काममोहितम् ॥

अर्थात् 'हे निषाद! तू ने जो काम-मोहित सारसो की जोडी में से एक का वध किया, उसके फलस्वरूप तुझे जीवन में स्थायी प्रतिष्ठा कभी नही मिल सकेगी।'

वर्तमान वाल्मीकीय रामायण के आदि काड में वाल्मीकि मुनि का जो चरित वर्णित है उसमें उक्त श्लोक सम्बन्धी घटना का भी उल्लेख है। वाल्मीकि मुनि अपना चरित स्वय और वह भी अन्य पुरुप में लिखने न वैठते। इससे भी यह प्रमाणित है कि वर्तमान प्रचलित रामायण की रचना वहुत वाद में हुई थी।

रामायण अत्यन्त उच्चकोटि का आदर्श महाकाव्य है। वेदकाल के वाद जव आर्य लोग आर्यावर्त में सामाजिक रूप से और अधिक उन्नत तथा व्यवस्थित हो चुके थे और पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के सम्वन्ध में नये नये और सुन्दर से सुन्दर नैतिक आदर्शों की स्थापना कर चुके थे, उस युग के जीवन का मनोहर चित्रण हमें रामायण में मिलता है। रामायण की कथा से सभी लोग परिचित हैं। रामायण की प्रथम रचना के हजारों वर्ष वाद आज भी भारत का वच्चा-वच्चा उस मर्यादा-पुरुषोत्तम की गाथा से परिचित है, जिसने सत्य की रक्षा और गार्हस्थिक तथा सामाजिक आदर्श की प्रतिष्ठा के लिये राज-पाट का लोभ छोड कर चौदह वर्ष का वनवास सहर्ष स्वीकार किया और उस सुदीर्घ निर्वासन-काल में अशिक्षित और अर्द्धशिक्षित अनार्य जातियो के वीच में आर्य धर्म और आर्य सस्कृति का प्रचार किया। कौन ऐसा भारतीय है जिसका हृदय उस आदर्श आर्य ललना, सतीसाध्वी सीता के अटूट पति-प्रेम और अपूर्व आत्म-त्याग की मर्म-विदारक कहानी से मथित न हुआ हो? जिस प्रथम कवि ने उस अमर महाकाव्य की मूल रचना की, और उसके अनुयायी जिन दूसरे श्रेष्ठ कवियो ने उसमें परिवर्तन और परिवर्द्धन किया उनका मानव-चरित्र और मानवीय आदर्श-सम्बन्धी ज्ञान कैसा प्रबल रहा होगा और अनुभूति कैसी तीखी रही होगी, इसका ठीक-ठीक अनुमान लगा सकना भी आज कठिन है।

रामायण के वाद महाभारत की रचना हुई। इस महाग्रन्थ में कौरवो और पाडवों के वीच के जिस महायुद्ध का वर्णन है उसका काल यद्यपि ईसा के समय से प्राय डेढ हजार वर्ष पूर्व माना जाता है, तथापि महाभारत का जो रूप आज प्रचलित है वह भी लगभग उसी काल में रचा गया था जिस काल में रामायण का वर्तमान रूप रचित हुआ। मूल महाभारत वेदव्यास द्वारा रचित वताया जाता है, जो अनुश्रुति के अनुसार, महाभारत-युद्ध के समय वर्तमान थे। यह तो अनुमान-सिद्ध है कि

महाभारत में वर्णित मूल कथा, रामायण की ही तरह, ग्रथवद्ध होने के सैकडो वर्ष पूर्व लोक-कथा के रूप में जनसाधारण में प्रचलित रही होगी। पर पुस्तक-रूप में उसकी प्रायमिक रचना कव हुई, इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित वात नही वतायी जा सकती।

महाभारत का प्रचलित रूप कई संस्करणो का समन्वय है। सम्भवत: उसका प्रथम सस्करण पूर्व-नन्द-युग में हुआ था। प्रारम्भ में उसमें केवल २४ हजारश्लोक थे, वाद में विभिन्न युगो में उसमें विभिन्न कवियो ने अपने-अपने रचे हुए श्लोक जोड-जोड कर उसका आकार वहुत वढा दिया। आज उसमें प्राय एक लाख तक श्लोक पाये जाते है।

महाभारत में वर्णित कौरवो और पाडवों का युद्ध जिस युग में वास्तव में घटित हुआ होगा वह युग चाहे वहुत भीषण न रहा हो, पर जिस युग में महाभारत की रचना हुई वह निश्चय ही वहुत ही विकट सघर्षमय होगा। तभी उसके रचयिता ने ऐसी भयकर और आतक उपजाने वाली व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ का वर्णन उसमें किया है कि पढ कर रोगटे खडे हो जाते है। वैसे महाभारत की मूल कथा वहुत ही सीधी-सादी है।

कौरव और पाडव दो भाइयो की सन्तान थे। दोनो दलो के वीच इस वात पर झगडा हुआ कि राज्य का वास्तविक अधिकारी कौन है। कायदे से अधे राजा के लडको को राज्य नही मिलना चाहिए था। पर वे इस आधार पर शासन-सूत्र अपने हाथो में वलपूर्वक लिये रहे कि उनका पिता वडा भाई था। पाडवो को उन्होने राज्यभाग के रूप में केवल एक जगल प्रदान किया। पाडवो ने उसी जगल को साफ करके इद्रप्रस्थ नगर वसाया और फिर कौरवो का राज्य छोड कर कई दूसरे राज्यो को अपने पराक्रम से जीत लिया। उनकी श्रीवृद्धि होने से कौरवो को जलन हुई। उन्होने जुए में उन्हें ठग कर उनका सारा राज्य छीन लिया और उन्हें तेरह वरस तक जगल में रहने को वाध्य किया। शर्त के अनुसार जव उन्होने तेरह वर्ष वाद अपना राज्य वापस मांगा तव कौरवों ने विना युद्ध के राज्य लौटाने से साफ इंकार कर दिया। कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनो के वीच घनघोर युद्ध हुआ जिसमें कौरव वुरी तरह हारे।

पर इस साधारण सी कथा में महाभारत के कवि या कवियो ने कल्पना का अभिनव पुट देकर ऐसी सुन्दर गाथा रच डाली जो भारतीय समाज पर युग-युगो के लिये अपना अमिट प्रभाव छोड गयी है। महाभारत के रचयिता केवल श्रेष्ठ

कवि ही नही थे, वे वहुत वडे तत्वज्ञानी, महान् नैतिक और राष्ट्रीय आदर्शों के सस्थापक और लोकोत्तर-चेता भी थे। महाभारत की कथा के भीतर से उन्होने महान् मानवीय समस्यायें उठायी है और उनका सुन्दर समाधान उपस्थित किया है। गीता के समान चरम-ज्ञान-निदर्शक ग्रन्थ की रचना भी किसी महाभारतयुगीन ऋषि ही ने की थी, जिसने उस गागर के भीतर कृष्ण द्वारा प्रचारित ज्ञान का सागर भर दिया था।

महाभारत के वाद पुराण युग आता है। पुराण का शाब्दिक अर्थ है पुराना, और रूढि अर्थ है वह ग्रन्थ जिसमें पुरानी गाथायें सकलित हो। यो तो वैदिक युग में भी पुराणो का उल्लेख पाया जाता है, जिनका आशय पुरानी अनुश्रुतियो से रहता होगा। और महाकाव्य युग में भी पौराणिक गाथायें किसी न किसी रूप में प्रचलित रही है। पर 'पुराण' नाम से जो ग्रन्थ आज पाये जाते है उनकी रचना अपेक्षाकृत वहुत वाद की है। विष्णु पुराण में लिखा है कि पुराण उस ग्रन्थ को कहना चाहिए जिसमें सर्ग, प्रतिसर्ग (अर्थात् सृष्टि तथा उपसृष्टि), मन्वतर, वशानुचरित, आख्यान, उपाख्यान, गाथा तथा काल का वर्णन हो। पर प्रचलित पुराणो में इनके अलावा ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि विभिन्न प्रमुख देवताओ की महिमा के वर्णन द्वारा अलग-अलग साम्प्रदायिक धर्मों का प्रचार, लोकाचार-वर्णन और तीर्थ-महिमा-कीर्तन आदि के सिलसिले में भौगोलिक विवरण भी पाये जाते है। मत्स्य पुराण में कहा गया है कि पहले एक ही पुराण था, वाद में उसी एक से १८ पुराण उत्पन्न हुए। इस तथ्य में सचाई इस कारण से दिखायी देती है कि विभिन्न पुराणो में थोडे बहुत रद्दोवदल के साथ प्राय एक ही तरह की वातें, वल्कि एक ही तरह के श्लोक पाये जाते है।

१८ पुराणों के नाम इस प्रकार है ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, भागवत पुराण, नारद पुराण, मार्कण्डेय पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्म वैवर्त पुराण, लिंग पुराण, वराह पुराण, स्कद पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, गरुड पुराण और ब्रह्माड पुराण।

पुराणो की रचना या सकलन में यद्यपि अनेक अज्ञातनामा और अप्रसिद्ध लेखको का हाथ रहा है और फलस्वरूप उनमें वहुधा विचित्र उलझनो से भरी परस्पर-विरोधी वातें पायी जाती है, तथापि नद-युग से लेकर गुप्त युग तक के

वहुत से मूल्यवान ऐतिहासिक तथ्य उनमे पाये गये है, जिनके द्वारा प्राचीन भारतीय इतिहास की खोज मे वहुत वड़ी सहायता इतिहासकारो को मिली है।

पुराण युग में, जो कि वहुत लम्वा है, और उसके वाद भी, वहुत से सुन्दर काव्य रचे गये, जिनमें कुछ महाकाव्य भी थे, जैसे महाकवि कालिदास-रचित रघुवश और कुमारसम्भव, अश्वघोष-रचित वुद्धचरित, भारवि-कृत किरातार्जुनीय, माघ प्रणीत शिशुपाल-वध, और श्रीहर्ष का नैषध-चरित।

कालिदास की गणना ससार के सर्वश्रेष्ठ कवियो में की जाती है। उनके महाकाव्यो में कला की अनुपम सुन्दरता और मोहकता के अतिरिक्त जीवन-सम्वन्धी गहन ज्ञान और विज्ञान का परिचय मिलता है। रघुवश में रघुकुल का वर्णन और कुमारसम्भव में पार्वती की तपस्या, शिव से विवाह और फलस्वरूप वीर कुमार की उत्पत्ति का वर्णन है। अश्वघोष वौद्ध था। वह भी अपने युग का महान् कवि और पडित था। वुद्धचरित में वुद्ध के जीवन का अत्यन्त मनोरम और काव्यात्मक वर्णन है। शिशुपालवध की कथा महाभारत से ली गयी है, जिसमें कृष्ण द्वारा दुर्मुख और अनाचारी शिशुपाल के वध का वर्णन किया गया है। 'किरातार्जुनीय' में किरात वेषधारी शिव के साथ अर्जुन की लडाई और वाद में शिवजी के प्रसन्न होने की कथा अर्थगौरवशाली कविता द्वारा वर्णित की गयी है। भट्टिकाव्य में आलकारिक भाषा में रामकथा का वर्णन किया गया है। नैषधचरित में नल और दमयन्ती की कथा वर्णित है। इसमें अलकारो की खूव भरमार है। सुन्दरता और स्वाभाविकता में 'रघुवश', 'कुमारसम्भव' और 'वुद्धचरित' की तुलना में वाद वाले सव महाकाव्य फीके पड़ जाते है।

नाटको का प्राथमिक रूप हमें ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद की जो ऋचाए दो व्यक्तियो के वीच कथोपकथन या सवाद के रूप में पायी जाती हैं उन्हें वाद में रगमच पर नाटकीय ढग से प्रस्तुत किया जाने लगा। यम और यमी, सरमा और पणि लोगो के वीच सवाद इस सम्वन्ध में उदाहरण के तौर पर उपस्थित किये जा सकते हैं। प्रारम्भिक युग में नृत्य के रूप में भी पुरानी कथाओ को विविध भाव-भगिमा द्वारा प्रस्तुत किया जाता था। यह इस वात से भी प्रमाणित होता है कि नाटक और नट (अर्थात् अभिनेता) ये दोनो शव्द नट् धातु से वने हैं जो सस्कृत 'नृत्' का प्राकृत रूप है। इसका अर्थ है नाचना।

भारतीय अनुश्रुति के अनुसार नाटक की अवतारणा सीधे स्वर्ग से भरत मुनि द्वारा हुई थी। उन्होने उस विद्या को व्रह्मा से सीख कर गधर्वो और अप्सराओ को उसकी शिक्षा दी थी। वाद में मर्त्यलोक के मनुष्यो को भी उन्होने उस कला से लाभान्वित किया था। इस अनुश्रुति से इतना तो स्पष्ट ही है कि भरत नाम के किन्ही मुनि ने ही पहले-पहल नाटक सम्वन्धी कला को सुन्दर और सुसस्कृत रूप में जनता के आगे रखा था।

पतजलि के महाभाष्य में, जिसका समय प्राय २०० ई० पूर्व है, 'कस वध' तथा 'वलि वन्ध' नामक दो नाटको के खेले जाने का उल्लेख है। इससे प्रमाणित है कि उस युग में नियमित रूप से नाटक खेले जाने लगे थे।

हमारे प्राचीन आलकारिको ने नाटक को काव्य के ही अन्तर्गत माना है। काव्य के दो रूप वताये गये हैं दृश्य और श्रव्य अर्थात् देखे जाने योग्य और सुने जाने योग्य। नाटक स्वभावत दृश्य काव्य के अन्तर्गत आता है। नाटकीय कला ने इस देश में प्राचीन काल में ही किस हद तक उन्नति कर ली होगी इसका अनुमान इस वात से लगाया जा सकता है कि हमारे नाट्यशास्त्रियो ने नाटको के अट्ठाईस

भेद बताये है, जिनमे १० भेद रूपकों के है और १८ उप-रूपको के। रूपक, नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, भाण तथा वीथी ये दस रूपक है। अक, त्रोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, काव्य, श्रीनिगदित, नाट्यरासक, रासक, उल्लाप्यक तथा प्रेक्षण ये उप-रूपक है। इन सब भेदो में नाटक और प्रकरण ही मुख्य है।

नाटक की विशेषता यह है कि उसमें वेद या पुराण, रामायण या महाभारत से लिया गया कोई ख्यात वृत्त या प्रसिद्ध वृत्तात रहना चाहिये। स्वकल्पित वृत्तात जिसमें हो उस रूपक को नाटक नही माना जा सकता। नाटक का नायक धीरोदात्त, प्रख्यातवश या राजर्षि होना चाहिये। प्रधान रस श्रृगार या वीर होना चाहिये। पाच से लेकर दस तक अक होने चाहिये, अधिक नही। प्रकरण का वृत्त लौकिक या कवि-कल्पित होना चाहिये। उसका नायक धीरप्रशान्त, दया और दाक्षिण्य से युक्त होता है। प्राचीन नाटको में कालिदास का 'अभिज्ञानशाकुतल' सबसे प्रसिद्ध है और प्रकरणो में 'मृच्छकटिक'।

'अभिज्ञानशाकुतल' केवल सस्कृत नाटको में ही प्रमुख नही माना जाता, बल्कि विश्व-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ नाटको में उसकी गणना की जाती है। उसमे कवि ने केवल नाटकीय कला की बारीकियो का ही सुन्दर प्रदर्शन नही किया है, वरन् मनोवैज्ञानिक आधार पर विविध प्रकार के चरित्रो का सहज और स्वाभाविक चित्रण भी किया है। उसमें केवल श्रृगार रस की मनोमोहक उद्भावना ही नही की गयी है, वरन् महान् मानवीय आदर्शों का भी अनुपम प्रस्फुटन किया गया है। शकुतला कोई साधारण प्रेम-पीड़िता नायिका नही है, कवि ने उसे जीवन की महान् साधिका के रूप में प्रदर्शित किया है। महाकवि गेटे के शब्दो में उसमें मर्त्य और स्वर्ग दोनो के चुने हुये सम्मिलित तत्वो का सुन्दर समन्वय पाया जाता है।

'मृच्छकटिक' प्राचीन परिभाषा के अनुसार प्रकरण है, किन्तु आधुनिक परिभाषा के अनुसार वह भी नाटक ही है। उसे हम प्राचीन युग का यथार्थवादी नाटक कह सकते है। उसके अधिकाश पात्र और पात्रिया कवि की आदर्शात्मक कल्पना की सृष्टि नहीं है, वरन् जीवन के बीच से निकले हुये जीते-जागते व्यक्ति है। उसका नायक चारुदत्त एक सुसस्कृत ब्राह्मण है जो कभी एक सम्पन्न व्यापारी था, किन्तु नाटक आरम्भ होने के समय वह अपनी दानशीलता और उदार प्रकृति के कारण

दरिद्र और अकिंचन अवस्था को प्राप्त हो चुकना है, फिर भी अपने स्वभाव की शालीनता और वदान्यता को कायम रखे हुये है। नगर की सुप्रसिद्ध नटी वसतसेना उस के गुणो पर मुग्ध होकर उस पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार रहती है। चारुदत्त भी उसके प्रति तीव्र आकर्षण का अनुभव करता है, पर अन्त तक बडी ही शालीनता और सयम से पेश आता है। प्रजा जिस राजा को नही चाहती उसका अत्यन्त नीच-प्रकृति, भयकर धूर्त और निपट मूर्ख साला राजा से अपने सम्बन्ध का अनुचित लाभ उठाता हुआ वसतसेना को अपने वश मे करने के कुटिल किन्तु व्यर्थ प्रयत्नो से जब तग आ जाता है तब एक दिन उसे निर्जन मे पाकर उसका गला घोट डालता है और न्यायालय में यह शिकायत करता है कि चारुदत्त ने उसकी हत्या की है। नाटक की कथा बडे ही कूटचक्रो मे होकर एक ओर विकट धूर्तो और दूसरी ओर सहज मानवीय गुणो से समन्वित स्त्रियो और पुरुषो के बीच के द्वन्द्वो और सघर्षो के यथार्थ चित्रण के रूप में बहुत ही सुन्दर और स्वाभाविक रूप से आगे बढती जाती है। वसन्तसेना मरी हुई-सी लगने पर भी मरती नही है, बेहोश हो जाती है। एक बौद्ध सन्यासी उसे होश में लाता है। इधर विद्रोही प्रजा क्राति द्वारा अत्याचारी राजा को हटा कर चारुदत्त के पक्ष के एक व्यक्ति को राजगद्दी पर बिठाती है। अन्त में नायक और नायिका का मिलन हो जाता है।

'मृच्छकटिक' सस्कृत साहित्य में अपने ढग का एक ही नाटक है। इसमें यथार्थ जीवन की पृष्ठभूमि में यह दिखाया गया है कि आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियो का बहुत बडा प्रभाव जीवन पर पडने पर भी अन्त में मानवीय गुणो की ही विजय होती है। उसमें विविध और विचित्र प्रकार के चरित्रो का चित्रण ऐसी यथार्थवादी मनोवैज्ञानिक विधि से किया गया है जो शेक्सपियर की नाटकीय कला की याद दिलाता है। कुछ लोग कालिदास से शेक्सपियर की तुलना करते है, पर कालिदास और शेक्सपियर की शैली और रूपविधान में बहुत बडा अन्तर है। कालिदास की कला कुछ विषयो में शेक्सपियर से भी उन्नत सिद्ध हो सकती है, पर यथार्थ जीवन के सजीव पात्र-पात्रियो का जैसा सच्चा मनोवैज्ञानिक चित्रण शेक्सपियर ने अपने नाटको में किया है उसकी तुलना प्राचीन भारतीय साहित्य में केवल 'मृच्छकटिक' के रचयिता शूद्रक की कला से ही हो सकती है।

कुछ खोजियो का यह कहना है कि 'मृच्छकटिक' का कथानक भासकृत 'चारुदत्त' नामक अधूरे नाटक से लिया गया है। १९१२ तक भास के नाटको का कही

कोई पता नही मिलता था। उक्त वर्ष श्री गणपति शास्त्री ने उन लुप्त नाटको की पुरानी पाडुलिपिया खोज निकाली। भास के जो नाटक प्राप्त हुये है उनमें 'स्वप्नवासवदत्ता' को विशेष स्थान दिया जाता है। इस नाटक मे बहुत ही सुन्दर, सरल और सहज शैली में वत्सराज उदयन का अपनी प्रियतमा अवति की राजकुमारी वासवदत्ता से विछोह और नयी रानी मगध की राजकुमारी पद्मावती के यहा तीनो के सुखद मिलन की घटनाओ का चित्रण नाटकीय कुशलता के साथ हुआ है। पर यह होने पर भी भास की कला परवर्ती युग के नाटक 'अभिज्ञानशाकुतल' और 'मृच्छकटिक' के रचयिताओ की कला सम्बन्धी सूक्ष्मता और गहराई तक नही पहुचती।

भास, कालिदास और शूद्रक के बाद सबसे बडा नाटककार भवभूति हुआ। वह आठवी शताब्दी में कन्नौज के राजा यशोवर्मन के आश्रय मे रहता था। उसके दो नाटक बहुत ही प्रसिद्ध है 'उत्तररामचरित' और 'मालतीमाधव'। 'उत्तररामचरित' में सीता-वनवास की कहानी अत्यन्त मार्मिक और करुण शैली में नाट्यरूप मे चित्रित हुई है। 'मालतीमाधव' प्रकरण के अन्तर्गत आता है। उसका नायक एक छात्र है जो बडी कठोर साधना द्वारा अपनी प्रेमिका को प्राप्त करता है।

भवभूति की रचनाओ के बाद विशाखदत्त द्वारा रचित 'मुद्राराक्षस' नामक नाटक ने ख्याति प्राप्त की। 'मुद्राराक्षस' भी अपने ढग का अकेला नाटक है। इस राजनीतिक नाटक में एक भी स्त्री पात्र नही है। चाणक्य और राक्षस—इन दो परस्पर-विरोधी पक्षो के मन्त्रियो के बीच गुप्तचरो की सहायता से जो कूटयुद्ध चलता है उसका चित्रण उक्त नाटक में बडी ही कुशलता से किया गया है।

उक्त नाटको के अतिरिक्त सस्कृत साहित्य मे जिन नाटको ने विशेष ख्याति प्राप्त की है उनके नाम इस प्रकार है हर्षदेवरचित 'रत्नावली', राजेश्वर प्रणीत 'कर्पूरमजरी', कृष्णमिश्र रचित 'प्रबोधचन्द्रोदय' और नारायण भट्ट रचित 'वेणीसहार।'

इनमें 'प्रबोधचन्द्रोदय' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह एक विचित्र प्रकार का रूपक है। इसके कथानक का सार इस प्रकार है —काशी का दुष्ट राजा महामोह अपने मित्र चार्वाक और काम, क्रोध, लोभ, दभ, और अहकार नामक मन्त्रियो की सलाह और सहायता से धार्मिक राजा विवेक और उसके सद्धर्म के साथी और

आत्मीय सतोष, वस्तुविचार, शान्ति, करुणा, मैत्री, भक्ति, क्षमा आदि को राज्य से निर्वासित कर देता है। एक भविष्यवाणी के अनुसार विवेक का सखा पुरुष उपनिषत् से विवाह करता है और फलस्वरूप प्रवोधोदय नामक पुत्र उत्पन्न होता है। उसकी सहायता से वडे मघर्षो और चक्करो के वाद अन्त में विवेक की विजय होती है।

कुछ पाश्चात्य इतिहासकारो का यह अनुमान है कि भारतीय नाट्यकला की उत्पत्ति और विकास में यूनानियो का हाथ है। पर अव इस वात के निश्चित प्रमाण मिल चुके है कि यूनानियो के भारत आने से वहुत पहले से ही हमारे देश में नाट्य कला वहुत विकसित हो चुकी थी। यह सम्भव है कि वाद में रगमच के निर्माण में यूनानी प्रभाव किसी हद तक पडा हो।

१०

सत-परपरा

'सन्त' शब्द का प्रयोग प्राचीन साहित्य मे विविध अर्थों में हुआ है, जैसे पडित, पवित्रात्मा, उदारचरित, साधुस्वभाव, आध्यात्मिक साधक, तपस्वी आदि। पर वास्तविकता यह है कि 'सन्त' शब्द सुनते ही प्रत्येक भारतीय के मन में एक ऐसे साधक का चित्र खिच जाता है जिसमें उक्त सभी गुणो का समन्वय हो चुका हो।

यदि 'सन्त' शब्द को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया जाय तो हमारे देश में सन्त परम्परा वैदिक काल से पायी जाती है। वैदिक युग के जिन ऋषि-मुनियो ने निष्काम साधना द्वारा विश्व-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर आध्यात्मिक सत्यो की खोज की और अपनी खोज का फल ससार को प्रदान किया वे निश्चय ही इस देश के सबसे पहले पूजे जाने योग्य सन्त थे। ज्ञानयोग की साधना द्वारा मानवात्मा को समस्त दु.खो से आत्यतिक मुक्ति का पाठ पढाने वाले कपिल मुनि को कुछ विद्वान् हमारे देश का आदि सन्त मानते है। गीता के भीतर ज्ञान, कर्म और भक्ति की सम्मिलित साधना का पाठ पढाने वाले महासन्त कृष्ण तो हमारे यहा साक्षात् भगवान् के अवतार के रूप में पूजे जाते है। 'सर्व खल्विद ब्रह्म' इस परम सत्य का बोध कराने वाले उपनिषद् युग के महाद्रष्टा भी बहुत बडे सन्त थे। वाल्मीकि और वेदव्यास भी इसी कोटि में आते है। विश्वबन्धुत्व, विश्वसमता, आत्मत्याग, और सर्वभूत-हित का पाठ पढाने वाले महात्मा बुद्ध और अहिंसा, सयम और सम्यक् ज्ञान की शिक्षा देने वाले वर्द्धमान महावीर का नाम भी उसी सन्त-परम्परा में आता है।

बौद्ध युग के ह्रास काल में जब देश की जनता विविध धार्मिक और तान्त्रिक मतवादो के चक्कर में पड़ गयी थी और सर्वत्र पाखड और अनाचार का बोलबाला हो गया था तब सिद्ध सम्प्रदाय के सन्तो का आविर्भाव हुआ, जिन्होने पाखडी ब्राह्मणो, जैनो, बौद्धो तथा तान्त्रिको को कडे शब्दो में दुत्कारा। सरहपा, काण्हपा आदि सिद्धो ने बताया कि चित्त ही मनुष्य की सम्पूर्ण साधनाओ का बीजक्षेत्र है

और चित्त-शुद्धि ही परम मिद्धि है। वही मृष्टि का, सृष्टि मम्वन्धी दु खो का मूल कारण है और वास्तविक निर्वाण भी उमी के भीतर निहित है। उमी समय कुछ जैन मुनियो ने भी पाखड का खडन करने वाला मुधारवादी पथ पकडा, जिनमें देवमेन और मुनि राममिंह प्रमुख है।

उक्त बौद्ध मिद्धो और जैन मुनियो के बीच के समय दक्षिण मे शकराचार्य ने लुप्तप्राय वैदिक धर्म के पुनरुद्धार का बीडा उठाया। उन्होने एक ओर उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म की एकातिक सत्ता प्रमाणित करते हुए अद्वैतवाद का प्रचार किया और दूसरी ओर लौकिक हिन्दू धर्म को एक नये साचे मे ढाल कर स्मार्त मार्ग का प्रवर्तन किया। शुद्धाचार द्वारा वर्णाश्रम धर्म का पालन और शुद्ध अन्त करण द्वारा मर्वव्यापी और 'एकमेवाद्वितीय ब्रह्म' का चिन्तन करने का उपदेश उन्होने दिया। वैदिक हिन्दू धर्म की ढहती हुई इमारत को फिर से सुप्रतिष्ठित करने के लिये उन्होने देश के चार कोनो मे चार मठो की स्थापना की। जनता के अधमरे प्राणो में एक नयी धार्मिक चेतना की लहर उमड पडी।

शकराचार्य के निर्गुण ब्रह्म सम्बन्धी अद्वैतवादी मत में बाद में रामानुजाचार्य ने सुधार किया। रामानुजाचार्य ने शकर के तर्कसिद्ध ज्ञान में भावनात्मक सरसता लाने की आवश्यकता देखी। उन्होने ब्रह्म के सगुण रूप पर प्रकाश डालते हुए ज्ञान के साथ भक्ति के भी महत्व पर जोर दिया और अपने नये मत का नाम विशिष्टाद्वैत रखा। जिस भक्ति-मार्ग का क्षेत्र रामानुजाचार्य ने तैयार किया उस पर माधवाचार्य ने एक नया बीज डाला। उन्होने द्वैत मत का प्रचलन करते हुए यह उपदेश दिया कि भक्ति द्वारा ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। विष्णु को जगत् का नियता और परमेश्वर बताते हुए उन्होने कहा कि आरम्भ में एकमात्र नारायण अर्थात् विष्णु थे। न ब्रह्मा थे न शकर। विष्णु ही आदिम आनन्दस्वरूप है।

निम्बार्काचार्य ने इस भक्तिमार्ग को और अधिक विकसित और पुष्ट करते हुए द्वैताद्वैत मत चलाया। उन्होने राधा और कृष्ण के युगल रूप की उपासना करने का उपदेश दिया। वे भक्ति भाव को अधिक सरस और मधुर बनाने के पक्ष में थे।

शुद्धाद्वैतवादी वल्लभाचार्य ने भक्तिवादी परम्परा को और आगे बढाते हुए भोग, राग और सेवा द्वारा राधाकृष्ण की अनन्य उपासना पर जोर दिया। उन्होने भक्ति की साधना के मार्ग को और अधिक विस्तृत बना दिया, जिससे विभिन्न

भावानुभूतियो द्वारा भगवान् का अनुग्रह प्राप्त किया जा सके। भगवान् के अनुग्रह को भागवत में पुष्टि कहा गया है। इसलिए वल्लभचार्य का मार्ग पुष्टि-मार्ग कहलाया। सुप्रसिद्ध कवि महात्मा सूरदास तथा अष्टछाप के दूसरे कवि इसी मार्ग के अनुयायी हैं। इस मार्ग के अनुयायी जीव को स्त्री तथा ब्रह्म को पुरुष मानते हैं। जीवात्मा अपने प्रियतम ब्रह्म के विरह में दिन रात रोती रहती है।

दक्षिण के उक्त आचार्यो द्वारा प्रचारित विविधा भक्ति का प्रभाव सारे देश पर पडा। वगाल में चैतन्य महाप्रभु तो इस भक्तिरस में इस कदर तल्लीन हो गये कि लोग उन्हे भगवान् का अवतार ही मानने लगे। उन्होने हिन्दुओ के अतिरिक्त मुसलमानो तथा दूसरे धर्मो के लोगो को भी अपने भक्त सम्प्रदाय में दीक्षित किया। शुद्ध मन से, प्रेममग्न होकर श्रीकृष्ण के ध्यान और भजन में रमे रहने का उपदेश उन्होने दिया।

वौद्ध सिद्धो के वाद, दसवी शती में नाथ योगी सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ। इस सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ माने जाते हैं, जिनका जन्म पश्चिमोत्तर भारत की तरफ कही हुआ था, ऐसा अनुमान किया जाता है। उन्होने जनता की वाणी में जनता को ज्ञान सिखाया। उनके विचार वेदान्त से मिलते हैं। उन्होने योग साधना पर वहुत जोर दिया। उनके मत से शरीर और इन्द्रियो को वश में करके चित्तवृत्तियो का पूर्ण निरोध करने में समर्थ होने पर ही परमतत्व की उपलव्वि हो सकती है। उनका कहना है

सारमसार गहनगभीर गगन उछलिया नादम्।
मानिक पाया फेरि लुकाया झूठा वादविवादम् ॥

आशय यह है कि योग साधना के द्वारा ब्रह्म रध्र तक पहुचने पर अनाहत नाद सुनायी पडता है, जो सार तत्वो का भी सार है और गम्भीर से भी गम्भीर है। इसी से ब्रह्म रूपी माणिक प्राप्त होता है, इसके अतिरिक्त सारा वाद-विवाद झूठा है।

इस नाथ सम्प्रदाय के सन्तो ने अपने युग के अपढ लोगो में भी गहन आध्यात्मिक ज्ञान और योग साधना का प्रचार करने मे वडी सफलता प्राप्त की। उन्होने वह जमीन तैयार की जिस पर हीन जाति के अशिक्षित लोग भी ज्ञान की वेल को फैलाने में सहायक सिद्ध हो सके। नामदेव दर्जी, रविदास चमार और कवीर जुलाहा ये श्रेष्ठ सन्त एक प्रकार मे उसी तैयार जमीन की उपज है।

कबीर के समय के पहले या आस-पास महाराष्ट्र मे वारकरी सम्प्रदाय के सन्तो ने देश में ज्ञान और भक्ति का प्रचार किया। इस सम्प्रदाय के प्रमुख सन्त है ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम । इनमें ज्ञानेश्वर और एकनाथ तो वहुत वडे पडित थे। नामदेव दर्जी थे और तुकाराम एक साधारण शूद्र के घर उत्पन्न हुए थे। वारकरी सम्प्रदाय के सन्त विट्ठलनाथ कृष्ण के परम भक्त थे। ये लोग ज्ञान और भक्ति के समन्वय पर जोर दिया करते थे। एकनाथ ने कहा है

भक्ति ते मूल, ज्ञान ते फल ।
वैराग्य केवल तयीचें फूल ॥
भक्तियुक्त ज्ञान ते थें नाही पतन ।
भक्ति माता तयाकरित से जतन ॥

अर्थात् भक्ति मूल है, ज्ञान फल है और वैराग्य फूल है। भक्तियुक्त ज्ञान ही ऐसा मार्ग है जो पतन से बचाता है।

सन्त नामदेव ने उत्तर भारत की यात्रा की और अठारह वर्ष पजाव में रहे। वहा उन्होंने भक्तियुक्त ज्ञान का प्रचार अपने रचे हुए पजावी हिन्दी के पदो को गा-गा कर किया। गुरु ग्रन्थ साहव में उनके कई पद सकलित है।

तुकाराम शूद्र थे। पठित न होने पर भी उनके भगवत्-प्रेम-रस से भीगे हुए शुद्ध अन्त करण से ऐसे सुन्दर पद, जिन्हें अभग कहते है, निकल आते थे कि सुनकर लोग मुग्ध और चकित रह जाते थे। सवर्णों ने उन्हें वहुत सताया पर वे अपनी भक्ति में सदा तल्लीन और जाति-पांति रहित आत्मा के विश्वास में सदा दृढ रहे।

स्वामी समर्थ रामदास भी तुकाराम के समय में ही हुए। ये महात्मा शिवाजी के गुरु रहने के कारण अधिक प्रसिद्ध है, पर अपने समय में इन्होने अपने उपदेशो द्वारा साधारण जनता को भी वहुत अधिक प्रभावित किया था। इन्होंने गीता के कर्मयोग पर विशेष आस्था प्रकट की है। भगवत् चिन्तन करते हुए लोक-सग्रह में निरन्तर निष्काम भाव से लगे रहना चाहिए, यह उनके उपदेशो का सार है।

नामदेव का प्रभाव उत्तर भारत के कई सन्तो पर पडा। रामानन्द भी उनसे काफी प्रभावित थे। रामानन्द ने रामभक्ति का प्रचार किया। सभी वडे सन्तो की

तरह उनकी भक्ति अधभक्ति नही थी। वह ज्ञान के रग में रगी हुई थी। उन्होने अपने सम्प्रदाय में मुसलमानो और अछूतो को भी वडे प्रेम से लिया। महात्मा कवीर और सन्त रविदास उन्ही के शिष्य वताये जाते है।

कवीर ने एक गरीव जुलाहे के घर पैदा होकर कष्ट से जीविका निर्वाह करते हुए भी सच्चे ज्ञान और सच्ची भक्ति का खूव प्रचार किया। अपढ होने पर भी उन्होने सुन्दर-सुन्दर पद रचे और उनके द्वारा जन-साधारण के अध-विश्वासो, सामाजिक और धार्मिक कुप्रथाओ तथा पाखडो के मूल पर आघात किया। सव धर्मो की और मनुष्य मात्र की एकता प्रमाणित करते हुए उन्होने एक ऐसे धर्म का प्रचार किया जो परलोक में नही वरन् इसी प्रत्यक्ष जगत् मे ही जीवन को व्यापक आनन्द-मय वनाने में समर्थ था।

सन्त रविदास या रैदास जूते मरम्मत करने या वनाने का पेशा करके जीविका चलाते थे। पढने की सुविधा न होने और कठिन सघर्षमय जीवन विताने को वाध्य होने पर भी उन्होने अपनी विशाल, उदार और मुक्त आत्मा को कभी सकुचित या खिन्न नही होने दिया। उनके मुख से वरवस ज्ञानामृत से भरी हुई ऐसी वानिया निकल पडती कि सुन कर विवादी वेदान्तवादी भी चकित रह जाते। कहते है कि मीरा ने भी उन्हें अपना गुरु मान कर ज्ञान सीखा था।

प्रेम-दीवानी मीरा ने पवित्र भक्ति की पुण्य रस-धारा वहाते हुए जिस सच्ची लगन और तन्मयता का परिचय दिया वह अपूर्व थी। वह रस-धारा उनके पदो द्वारा वहती हुई आज भी भावुक प्रेमियो के हृदय को अनिवर्चनीय आनन्द प्रदान करती है। उस रूढिवद्ध युग में झूठी लोक-लाज को ठुकरा कर भगवत्-प्रेम में पागल होकर घर से वाहर निकल पडने का साहस कितना महान् था इसकी कल्पना भी आज ठीक से नहीं की जा सकती। जनश्रुति के अनुसार सन्तो के सन्त तुलसीदास ने मीरा को यह सलाह दी थी कि यदि उनके घरवाले उनकी भक्ति में वाधक सिद्ध हो तो वह निश्शक घरवालो को छोड कर ससार के खुले आगन मे आकर हरि-भजन करे। मीरा को उनके इस उपदेश से वडा वल मिला था।

रामचरितमानस के सुप्रसिद्ध रचयिता, महाकवि और महासन्त तुलसीदास से कौन परिचित नही है ? राम का आसरा पकड कर उन्होने अपने युग में रोग-शोक, दु ख-दारिद्र्य से त्रस्त, अज्ञान और अध-विश्वासो से ग्रस्त, भोली और

भटकी हुई जनता के निराशा के घने कुहरे में घिरे हुए मन में जो प्रकाश जलाया था-महान आशा की जो किरनें फुटायी थीं वह किसी साधारण आध्यात्मिक शक्ति वाले व्यक्ति का काम नहीं था। तुलसीदास ने सामूहिक रूप से जन-मन में एक अभिनव स्फूर्ति प्रदान करने वाली चेतना जगायी और उसे नया बल और नया विश्वास दिया।

भारत के सुधारक

पिछले डेढ सौ वर्षो के भीतर जो महान सन्त और सुधारक इस देश में हो गये हैं उनमें राजा रायमोहन राय का नाम सबसे पहले आता है। राजा राममोहन राय का जन्म उस समय हुआ जब ब्रिटिश शासन की नीव भारतवर्ष में जम चुकी थी। विशेषकर वगाल में तो अँगरेजो का अधिकार पूर्णतया स्थापित हो चका था। १७७४ ई० को हुगली जिले के अन्तर्गत राधानगर ग्राम के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में उनका जन्म हुआ। नवावी अमलदारी मे उनके प्रपितामह कृष्णचन्द्र को राय की उपाधि मिली थी, वैसे वे लोग वद्योपाध्याय थे।

राममोहन राय की तीव्र प्रतिभा का परिचय वचपन से ही मिलने लगा था। वहुत छोटी उम्र मे ही उन्होने अरबी व फारसी भाषाए सीख ली थी। और कुछ ही समय वाद सस्कृत भाषा का भी गहरा ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

१६ वर्ष की अवस्था मे उन्होने पौत्तलिकता (अर्थात मूर्ति पूजा) के विरोध में एक पुस्तक लिखी। फलस्वरूप उनके सभी सगे स्वजन उन्हें नास्तिक और विधर्मी कह कर उनका तिरस्कार करने लगे। वह ज्ञान की खोज मे तिव्वत आदि स्थानो में निकल पडे। जव लौट कर आये तव मूर्तिपूजा तथा तत्कालीन हिन्दू समाज में प्रचलित कुप्रथाओ के विरुद्ध उनका विद्रोह और तीव्रता से भडक उठा। उपनिषदो में जिस 'एकमेवाद्वितीय ब्रह्म' की चर्चा की गयी है केवल उसी की उपासना पर जोर देते हुए उन्होने 'ब्रह्म समाज' नाम से एक नये धर्म-समाज की स्थापना की। वर्ण-व्यवस्था, छुआछूत, जाति-पाति के भेदभाव को मिटा कर कर्म-काड, व्रत, उपवास, मूर्ति-पूजा आदि का वहिष्कार करके उन्होने अपने नये मत मे एक ऐसे प्रगतिशील दृष्टिकोण को अपनाया जो भारतीय सस्कृति के मूल तत्वो की पूरी रक्षा करने के साथ ही ईसाई धर्म के प्रचार की निरन्तर वढती हुई वाढ को रोकने में समर्थ हो सका। मूल यूनानी और हिब्रू भाषाओ मे वाइविल का अध्ययन करके

उन्होंने उस जमाने में, जबकि अँगरेजों और ईसाई पादरियो से लोग भयभीत रहते थे, निर्भीक भाव से कट्टरपंथी ईसाइयो के मतवाद की कडी आलोचना की। पर इस का अर्थ यह नही कि वह महात्मा ईसा के उद्देश्यो व प्रवचनो का विरोध करते थे। सभी धर्मो के मूलभूत सिद्धान्तो तथा आदर्शो को ग्रहण करने के वह पक्षपाती थे। प्रारम्भ मे कट्टर हिन्दुओ ने ब्राह्म धर्म का घोर विरोध किया। पर कुछ उच्च शिक्षा-प्राप्त और प्रगतिशील दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्तियो ने उनका साथ दिया, जिनमे रवीन्द्रनाथ के पितामह द्वारकानाथ ठाकुर और उनके सुपुत्र देवेन्द्र नाथ ठाकुर भी थे।

राममोहन राय ने सामाजिक सुधार के क्षेत्र में भी बहुत महत्वपूर्ण काम किये जिनमे सती-प्रथा का निवारण मुख्य है। पति के मरने पर स्त्री को बलपूर्वक जीवित अवस्था मे चिता पर लिटाने के हृदय विदारक दृश्य राममोहन राय अपनी आखो देख चुके थे। इसलिए समग्र हिन्दू जाति के सम्मिलित विरोध के बावजूद उन्होने लड-झगड कर १८२९ को सती प्रथा के विरुद्ध कानून पास करवा ही दिया। १८३० को वह इगलैण्ड गये और वही १८३३ को उनकी मृत्य हुई।

राम मोहन राय के बाद दूसरे प्रमुख सुधारक और सन्त स्वामी दयानन्द सरस्वती हुए। बचपन से ही उनकी रुचि धार्मिक सुधार की ओर थी। जब उनके पिता ने उनका विवाह करने का निश्चय किया तब वह घर से भाग निकले। जब सभी शास्त्रो में पारगत होकर स्वामी जी धर्म प्रचार के लिये बाहर निकले तब उन की आयु ३९ वर्ष की थी। जाति-पाति और स्पृश्य और अस्पृश्य का भेद मिटाते हुए उन्होंने करोडो हरिजनो के लिये वैदिक धर्म का द्वार खोल दिया। हिन्दू जाति और भारतीय सस्कृति की रक्षा और व्यापक सगठन के उद्देश्य से ही उन्होने ऐसा किया उस समय कट्टर सनातनियो ने उन पर पत्थर बरसाये और उन्हें हर तरह से परेशान किया। पर उन्होने दृढ विश्वास के साथ घोषित किया कि जो लोग आज मुझ पर पत्थर फेंक रहे हैं वे ही एक दिन फूल बरसायेंगे।

अछूतो के साथ ही उन्होने भारतीय नारी के उद्धार का भी बीडा उठाया और शिक्षा-प्रसार सम्बन्धी आन्दोलन भी चलाया। आर्य समाज और आर्य धर्म का प्रवर्तन करते हुए उन्होने राष्ट्रभाषा हिन्दी के हित में भी बहुत बडा काम किया गुजराती होते हुए भी उन्होने हिन्दी को राष्ट्र भाषा मान कर हिन्दी में ही अपन

प्रमुख ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना की और भाषण भी हिन्दी में ही दिये। दुष्टो के षड्यन्त्र से उन्हें उनके रसोइये ने एक दिन विष-मिश्रित भोजन खिला दिया, जिसके फलस्वरूप १८८३ की दीपावली की रात को यह अद्वितीय प्रतिभाशाली महात्मा इस लोक से सिधार गए।

स्वामी दयानन्द के ही समय में एक और महापुरुष का आविर्भाव हुआ। यह थे स्वामी रामकृष्ण परमहस। उनका जन्म हुगली जिले के कामारपुकुर नामक ग्राम मे हुआ था। छुटपन से ही उनके अन्तर में आनन्दमयी जगन्माता के प्रति प्रगाढ भक्ति-भावना जागरित हो गयी थी। वह उन्ही के ध्यान में तल्लीन रहा करते थे और वीच-वीच में समाधि मे मग्न हो जाया करते थे। यद्यपि उन्हें दरिद्रता के कारण नियमित रूप से दर्शनो और शास्त्रो के अध्ययन का सुयोग नही मिला, तथापि उनका अन्त.करण इतना निर्मल था, कि विना कुछ पढे ही वह परम सत्य के अन्तिम रहस्य की तह तक प्रवेश करने में समर्थ हो गये थे। अपनी गहरी साधना द्वारा उन्हें यह अनुभूति हुई कि सभी धर्मो के भीतर निहित मूल सत्य एक ही है। उनके पास चाहे कोई शरावी आता चाहे सदाचारी, चाडाल आता या ब्राह्मण पडित, वह सवका आदर समान रूप से करते और सवको अपने अन्तर में निहित सच्चिदानन्दमय रूप का दर्शन करने का उपाय वताते थे। उनकी आश्चर्यजनक योग सावना, गहन ज्ञान और निश्चल स्वभाव की ख्याति चारो ओर फैल गयी थी और उस युग के वडे-वडे विख्यात व्यक्ति उनके शिष्य वन गये थे।

उन्ही शिष्यो में नरेन्द्रनाथ दत्त नामक एक नवयुवक भी था जो वाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से सारे ससार में ख्यात हुआ। स्वामी रामकृष्ण परमहस से प्रेरणा पाकर युवावस्था में ही सन्यास की दीक्षा लेकर, दीर्घ योग साधना के वाद स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका की यात्रा की और वहां शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लिया। उस सम्मेलन में सभी धर्मो की एकता पर जोर देते हुए उन्होने भारतीय वेदान्त का पाठ पाश्चात्य श्रोताओ को ऐसे प्रभावशाली ढग से पढाया कि सव लोग चकित और मुग्ध रह गये। तवसे उनकी ख्याति चारो ओर फैल गयी और कई विदेशी स्त्री-पुरुष घर-वार छोड कर उनके अनुयायी वन गये। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय जनता को केवल धर्म का ही पाठ नही पढाया वरन् राष्ट्रीय जागरण और सामाजिक सुधार के क्षेत्रों में भी उन्होने वहुत वडा काम किया।

स्वामी विवेकानन्द की ही तरह स्वामी रामतीर्थ ने भी विदेशो में वेदान्त का प्रचार किया। स्वामी रामतीर्थ एक पहुँचे हुए सन्त थे। 'सोहम्' की उपलब्धि उन्होने

केवल ज्ञान द्वारा ही नही की थी, वरन् अपने अन्तर की परिपूर्ण अनुभूति द्वारा भी की थी। जब वह अमेरिका गये थे तब वहा के लोग उनके व्यक्तित्व और भाषणो से इस कदर प्रभावित हो उठे थे कि कहते थे 'जीवित ईसामसीह अमेरिका आये है।'

स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे 'मै ससार मे प्रेम की वर्षा करूँगा और ससार को आनन्द की धारा में नहला दूगा। यदि कोई मेरा विरोध करेगा तो मै उसे गले लगा लूगा।'

आधुनिक युग के महान् कर्मयोगी लोकमान्य बालगगाधर तिलक को भी हम नही भुला सकते। लोकमान्य का जन्म १८५६ ई० में महाराष्ट्र के रत्नगिरि नामक स्थान में हुआ था। वकालत पास करने के बाद 'मराठा' और 'केसरी' नामक पत्र क्रमश अग्रेजी और मराठी मे में निकाल कर उनके द्वारा उन्होने राष्ट्रीय जागरण की जो लहर देश में फैलायी वह अपूर्व थी। लोकमान्य उग्र राष्ट्रीय दल के नेता थे और उस घोर दमन के युग में भी निर्भीक होकर अपने विचार प्रकट करते थे। उन्हे कई बार जेल जाना पडा। १९०८ में जब ६ वर्ष के लिये उन्हे माडले में कैद किया गया तब उन्होने 'गीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र' नाम से गीता का ऐसा विद्वतापूर्ण भाष्य लिखा जिसने जनता में एक नयी आध्यात्मिक शक्ति का सचार किया। लोकमान्य ने न केवल राष्ट्रीय दृष्टि से ही जनता में जागरण पैदा किया, वरन् सास्कृतिक दृष्टि से भी एक नयी चेतना जगायी।

योगिराज अरविन्द ने भी प्रारम्भ में राष्ट्रीय आन्दोलन के माध्यम से ही जनता को प्रभावित किया था। बाद में, १९१० में वह पाडीचेरी चले गये और वहा उन्होने एकात योग-साधना में रत रह कर दिव्य ज्ञान प्राप्त किया। उनकी साधना का लक्ष्य था प्रत्यक्ष स्थूल जीवन को दिव्य जीवन में परिणत करना। वह केवल व्यक्ति की ऐकान्तिक मुक्ति पर विश्वास नही करते थे, वरन् समग्र और सामूहिक मानव जीवन को बाहर और अन्तर के विकास द्वारा चेतना की उन्नततम स्थिति तक पहुचाने की आवश्यकता पर वह ज़ोर दिया करते थे। उनके गहन ज्ञानपूर्ण विचारो से सारे ससार की बुद्धिवादी जनता बहुत प्रभावित हुई है।

निश्चय कर लिया। इस प्रकार अपने वेदनाशील महाप्राण की उदार सहानुभूति द्वारा उन्हो ने केवल उन ग्रामीण माताओ और बहनो की ही लाज नहीं ढकी, बल्कि समग्र देश की लाज रख ली। समय आया और उन्होने परतत्रता के विरोध में सारे देश मे सगठित रूप से सत्याग्रह आन्दोलन खडा कर दिया। सदियो की दासता मे कुचले हुए देश के जड प्राणो में बिजली की तरह एक अपूर्व सजीवनी-चेतना की लहर दौड गई। 'मा भै' के रव से देश का कोना-कोना गूज उठा। मशीन युग की बर्बर हिंसक शक्ति से मत्त और अविकसित देशो के क्रूर दमन से अभ्यस्त सारा पाश्चात्य ससार आत्मशक्ति की उस अहिंसात्मक विजय को देख कर दग रह गया। जेलो की चहारदीवारी के भीतर वन्द वीरो की वेडियो की झनझनाहट के साथ ही देशवाणी की वीणा के सुप्त तार सहसा झनझना उठे। नव जागरण के साहित्य की सृष्टि ऐसी तेजी से होने लगी कि स्वय साहित्य-सर्जको को आश्चर्य होने लगा। केवल राष्ट्रीय चेतना से ही हमारा नया साहित्य अनुप्राणित नही हुआ, बल्कि एक व्यापक सास्कृतिक विकास की प्रेरणा भी उसे गति देने लगी। १९२० के बाद के अधिकाश भारतीय साहित्य मे गाधी जी के विचारो और आदर्श की छाप किसी न किसी रूप मे सुस्पष्ट अकित दिखाई देती रही।

जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये गाधीजी वर्षो तक देशवासियो को सुदीर्घ और कठिन साधना-पथ की ओर परिचालित किये रहे उसे सफलता के शिखर तक पहुँचा कर ही उन्होने विश्राम लिया। उन्होने केवल देश के आगे ही नही, समग्र ससार की पीडित मानवता के लिये भी एक ऐसा नया और महान आदर्श रखा जिस की कल्पना भी आज के हिंसावादी वैज्ञानिक युग मे नही की जा सकती थी। अणु शक्ति के नशे से बौराये हुए आज के ध्वसप्रेमी, युद्धवादी राष्ट्र आज भले ही महात्मा गाधी द्वारा प्रचारित और निर्देशित सत्य, अहिंसा और शान्ति के पाठ की उपेक्षा करे, किन्तु अतत उन्हे उसी ओर लौटना होगा, क्योकि 'नान्य पथा विद्यते यनाय', विश्व के सामूहिक और स्थायी कल्याण के लिये इस के सिवा दूसरा कोई पथ नहीं है।

रवीन्द्रनाथ ने साधना के जिस रूप को अपनाया वह गाधीजी से भिन्न था, पर दोनो के लक्ष्य अधिक भिन्न नही थे। दोनो ने देश की सामूहिक चेतना की मिट्टी को गहराई से खोद कर उस पर उन्नततम सास्कृतिक बीज बोये, अन्तर केवल इतना ही था कि जहा महात्मा गाधी राष्ट्रीय आन्दोलन के माध्यम से आगे आये वहा रवीन्द्रनाथ साहित्य और कला के द्वारा उसी उद्देश्य की ओर उन्मुख हुए।

रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा विराट और बहुमुखी थी। उनकी सूक्ष्म अनुभूतिशील चेतना में केवल सुन्दरतम और सुकुमारतम भाव ही प्रतिबिंबित नही होते थे, वरन् जीवन के कठोर और ठोस सत्यो का भी उद्बोधन उन में होता रहता था। वे कला के विविध रूपो और साहित्य के विभिन्न अगों द्वारा जहा एक ओर सुन्दरतम और सुकुमारतम रहस्यात्मक भावो का प्रस्फुटन कर के रसज्ञ जनता के सहृदय प्राणो को अलौकिक आनन्द से विभोर करते थे वहा दूसरी ओर यथार्थ जीवन के निर्मम सत्यो को प्रकाश में लाकर सोई हुई जनता के कानो में महाशख द्वारा जागरण का मत्र उद्घोषित करते थे। भारतीय साहित्य और सस्कृति की जो जमीन रवीन्द्रनाथ के पहले कई यगो से एक प्रकार से सूखी पडी थी उस पर रवीन्द्र-कविता ने ऐसा अमृत-रस-सिंचन किया कि वह देखते- देखते जादू की सी माया से एक सिरे से दूसरे सिरे तक लहलहा उठी। केवल भारतीय साहित्य पर ही नही, रवीन्द्र-साहित्य-धारा का प्रभाव समग्र विश्व-साहित्य-क्षेत्र पर किसी न किसी रूप में पडा।

रवीन्द्र और गाधी जैसी दो महाविभूतियो का आविर्भाव एक ही यग में और एक ही देश में होना प्रकृति की एक वहुत ही अद्भुत और आश्चर्यजनक योजना का परिणाम समझना चाहिये। दोनो ने अपनी महावाणी और महान कार्यो द्वारा हमारे तत्कालीन दलित देश के दु ख, शोक, लज्जा और ग्लानि से नत मस्तक को ससार के स्वतत्रताभिमानी राष्ट्रो के आगे ऊचा उठाया और हम लोगो की हीनता की भावना को दूर किया। उन्होने वैज्ञानिक सभ्यता के गरवीले नियताओ की उपेक्षाभरी दृष्टि की तनिक भी परवा न कर के दीन-हीन जनता के भीतर के देवता को जगाया और श्रम के गौरव की घोषणा की। उन्होने महात्मा ईसा के इस कथन की महिमा नये सिरे से, नये रूप में प्रचारित की कि 'दीन-हीन जन धन्य है, क्योकि पृथ्वी एक दिन उन्ही की हो कर रहेगी।' रवीन्द्रनाथ ने अपनी कविता में कहा 'जहा सव से अधम, दीन से भी दीन जनो का निवास है वहा तुम्हारे चरण विराजते हैं—सव के पीछे, सव के नीचे, सव कुछ गवाये हुए लोगो के वीच में।' एक दूसरी कविता में जागरण का गीत गाते हुए उन्होने देश की पीडित और निर्बोध जनता की ओर सकेत करते हुए कहा "इन सव मूढ म्लान, मूक मुखो को भाषा देनी होगी। इन सव दीन, हीन, खिन्न और भग्न प्राणो में आशा की वाणी झकृत करनी होगी। उन्हे वुला कर कहना होगा एक वार तुम सव इकट्ठा हो कर, सिर

ऊँचा कर के खडे तो हो जाओ। जिस के भय से तुम सब लोग भीत हो, वह अन्यायी तुम लोगो मे भी गया गज़रा और कायर है। जिस क्षण तुम लोग जाग जाओगे उसी क्षण वह सकोच से और त्रास से दुम दबा कर भाग खडा होगा।"

रवीन्द्रनाथ ने अभय वाणी घोषित करते हुए जो उपदेश दिया था उसे गाधी जी ने बार बार दुहराया और अपने जीवन-काल में ही उसे कार्य-रूप में परिणत कर दिखाया।

---

१ ३

जातियों का संगम

भारत की कहानी इस दृष्टि से कम रोचक, कम प्रभावशाली नही है कि इस भूभाग में, इतिहास के धूमिल प्रकाश के समय से, यही नही, उससे सदियो, सहस्राब्दियो पहले से, जबकि उसकी भौगोलिक रूपरेखा स्थिर भी नही हो पाई थी, ससार की विविध जातियो का सगम होत रहा है। यहा अनेकानेक जातिया आई, फैली, पनपी, उनमें से कुछ तो अपने चिट-फुट चिन्ह छोड कर चली गई, कुछ ने इस देश की छाप ग्रहण की और अधिकतर जातिया एक-दूसरे से इस प्रकार मिल-जल गईं कि अब यह कहना दुस्तर है कि उनमें से कोई भी अपने विशुद्ध रूप मे यहा वर्तमान है।

आर्यों का भारत में आना लगभग साढे तीन-चार हज़ार वर्ष पूर्व कहा जाता है, लेकिन जब उनके दल के दल, कई लहरो में यहा आए तो उस समय यहां उन्होने अन्य जातियो को बसा हुआ पाया जो सभ्यता के एक विशेष स्तर को प्राप्त हो चुकी थीं, जिन्होने अपना व्यवसाय दूर दूर तक फैला रखा था, जिन्होंने अपने विशाल नगर बसाये थे। आर्य विजेता के रूप में आए, उन की सभ्यता नागरिक सभ्यता नही थी, वे किसान और पशुपालक थे, उनके उपासना के ढग अलग थे। लेकिन उनमें विजेता का दभ था, अपने से पहले के निवासियो को, जिन्हें उन्होने दास, दस्यु और निषाद के नामो से पुकारा, जिन के काले वर्ण और चिपटी नाको का उन्होने उपहास किया, उन्होने तिरस्कार की दृष्टि से देखा। आर्यों ने आदिम वासियो, अनार्यों को अभिभूत किया, अपनी सभ्यता का विस्तार किया और क्रमश पजाब से, जहा वह पहले उतरे थे, उन्होने फैल कर सारे उत्तरी भारत में अपना आधिपत्य कर लिया। आर्यो और अनार्यों का मिश्रण इस समय होना आरम्भ हो गया था और यद्यपि आर्यो ने अपने को मिश्रण से बचाने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन ऐसा न हो सका।

लेकिन यह देखते हुए कि आर्यों से पहले यहा अनेक जातिया आ चुकी थी, आर्यों का भारत में आना अभी कल की बात कही जायगी। यह वास्तव में मानव-विज्ञान का विषय है और जिन विद्वानो ने इस विषय का विशेष अध्ययन किया है, उनका कहना है कि आर्यों से पहले कम से कम पाच मुख्य जातिया (अपने अनेक उपभेदो के साथ) सहस्राब्दियो के कालातर से इस देश में आ चुकी थी। कहते है कि भारत के सब से पहले मानव-निवासी हब्शी थे जो अफ्रीका से अरब, ईरान, बलूचिस्तान होते हुए आए थे, लेकिन अब उनके चिन्ह इस देश से प्राय मिट गये हैं, सिवाय इस के कि अदमान में, कोचीन और त्रावकोर की पहाडियों में, असम में नागो के रूप में और पूर्वी बिहार की राजमहल पहाडियो में कुछ आबादिया बच रही है। उन का शेष अश या तो यहा अभिभूत हो कर नष्ट हो गया, या देश से बाहर मलय तथा पूर्वी एशिया के और भागो में चला गया। हब्शियो के बाद आने वाली जाति को प्रोतो आस्ट्रेलायड का नाम दिया गया है। यह भी पश्चिम से आये जान पडते है, इनमें बहुत से भारत के हो रहे। भारत की आदिम-जातियो या आदिवासियो में बहुत से इसी जाति के है। कहते है एक समय एशिया में आस्ट्रेलिया भूभाग द्वारा जुडे हुए थे। इस जाति की एक शाखा आस्ट्रेलिया चली गई। भारतीय जनता के निचले स्तरो में आज भी प्रोतो आस्ट्रेलिया जातियो का खासा अश है। इसके बाद यहा मगोल जाति के लबे अथवा चौडे कपाल वाले कई वर्ग आए जोकि प्राय हिमालय की तलहटियो में फैले, लेकिन जिन के मिश्रण और भी दक्षिण में, विशेषत उत्तरी बगाल और भारत-बर्मा के सरहदी प्रदेश में मिलेगे। इनका अतिम वर्ग तिब्बती मगोली वर्ग है जिस के लोग अधिकतर सिकिम और भूटान में मिलेगे। फिर भूमध्यसागरीय जातियो के लोग है, जोकि कई वर्गों में आए। सभी लबे सर वाले थे। एक वर्ग मझोले कद का, काले वर्ण का, दुबले शरीर का था। इस वर्ग के लोग अधिकतर कन्नड, तमिल, मलयाली प्रदेशो में मिलते है। दूसरा वर्ग जो लबे कद का और साफ रग का था पजाब और गगा की ऊपरी घाटियों में मिलता है और आर्यो से पूर्व के सुसभ्य द्रविडो का था। यह आर्यो से घुलमिल गया और हिन्दू जाति तथा उत्तरी भारत की सस्कृति के विकास में इस ने खास योग दिया। इस जाति का एक तीसरा वर्ग, जिसे भूल से 'सामी' कहा गया है लबी नाक और सफेद रग वाले ऐसे लोगो का था जोकि पजाब, सिध, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के हो रहे। इसके अनन्तर एक और जाति के लोग आए जिन का विकास मध्यएशिया के पहाडी प्रदेशो में हुआ था और जिनकी तीन शाखाओं को अल्पीनी, दीनारी और आरमीनी नाम विशेषज्ञो ने दिये है। इनका फलाव देश

भर में हुआ, लेकिन वह विस्तार की बात है। विशेषकर दीनारी वर्ग के लोग बगाल, उडीसा, काठियावाड और कन्नड तथा तमिल प्रदेशो में वसे और अपने सव से विशुद्ध रूप में यह कुर्ग में मिलते है। आर्य इस लवी शृ खला की वाद की कडी है लेकिन यह कदाचित् अन्तिम होने के कारण सवसे प्रभावशाली हुए।

अभी वताई गई भारत की छ मुख्य जातिया, जो कि आपस के मिश्रण के कारण अनेक वर्गो में वट गई है और जिनके अनेक उपवर्ग आर्थिक प्रभावो के कारण हो गए है, भाषा की दृष्टि से चार भागो में विभाजित है (१) आस्त्रिक, कोल और मुडा इस की भाषायें है, (२) तिव्वती चीनी, (३) द्रविड और (४) भारतीय आर्य। सदियो-सहस्राब्दियो के कालान्तर के साथ भौगोलिक प्रभावो के अन्तर्गत आज एक विशाल जन-समूह प्रस्तुत करते है। बगाली, मराठी, गुजराती, तमिल, आध्र, उडिया, असमी, कन्नड, मलयाली, सिंघी, पंजावी, कश्मीरी, राजपूत, मध्यप्रदेश. . इन की अलग-अलग विशेषतायें उत्पन्न हो गई है, फिर भी यह एक विशाल भूभाग के, विश्वदेश के अंग है और वहुत सी वातें है जिनसे उन की वोली, पहनावे, रहन-सहन की विभिन्नता के वावजूद, उन में एकता है जोकि उन्हे संवल देती है और एक सूत्र में वाघे हुए है और जो भारतीय जनता को एक सपन्नता प्रदान करती है।

१४

हमारे गुफा मदिर

एक प्रसिद्ध पाश्चात्य कलासमीक्षक ने भारतीय गुफा मदिरो के विषय में लिखते हुए वताया है कि 'गुफामदिर' शब्द द्वारा हमें उन विशाल, पत्थर में काटे हुए, कलात्मक भवनो की ठीक-ठीक कल्पना नही हो पाती जो मानवीय निर्माण के ऊचे दर्जे के उदाहरण है। 'गुफा' शब्द से प्राकृतिक कदराओं का ध्यान होता है, जिनमें वैदिक काल में हमारे कुछ ऋषि निवास करते थे, लेकिन यह तथा-कथित गुफामदिर उत्कृष्ट मानवीय कृतिया है, और इनके निर्माण करने वालो को निर्माणकला का ऊचा शास्त्रीय ज्ञान था। इन्हे पत्थर में कटे हुए भवनो का नाम देना अधिक उपयुक्त होगा।

हमारे प्राचीन ऋषियो के आश्रम वनो में हुआ करते थे, बल्कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने हमारी पुरानी सभ्यता को आरण्यकी सभ्यता का नाम दिया है। बुद्ध भगवान ने अपने उपदेश वागो और अमराइयो में दिये। उनके सघ के लोग वहुत समय पीछे तक सामूहिक उपासना के लिये वाग-वगीचो में एकत्र होते थे। यह वात नही कि उस समय भवन नही होते थे। इनमें अधिकतर लकडियो का उपयोग होता था और अधिकतर उन पर छाजन रहा करते थे, इस तरह उनके अवशेष अब नही मिलते। धार्मिक चिन्हों और अवशेषों की रक्षा के लिये बौद्ध स्तूपो का निर्माण करते थे जो गृहो के भीतर प्रतिष्ठित होते थे और जिनके चारों ओर प्रदक्षिणा करने के लिये गली हुआ करती थी। इन गृहो में अधिकतर लकडी का उपयोग होता था।

मौर्यकाल में, कहते है कि अधिकतर मध्य तथा पश्चिम एशियाई सस्कृतियों के सपर्क के कारण, अधिक स्थायी सामग्री के उपयोग से वने भवनो की ओर प्रवृत्ति हुई और पत्थर का उपयोग अधिक होने लगा। भवनों, मूर्तियो और विशेषत लाटो के लिये, जिनके लिये मौर्यकाल विशेष प्रसिद्ध है, पहाडियो को काट कर भवनो के निर्माण की ओर भी ध्यान गया। वरबर पहाडियो में, गया के निकट

आजीविक सम्प्रदाय के साधुओं के लिये अशोक द्वारा बनाई गुफाए इनके उस समय के उदाहरण हैं। इनमें सब से मार्के का गुफा निवास वह है जो लोमश ऋषि की गुफा के नाम से प्रसिद्ध है। इसका सामने का हिस्सा निश्चय ही तत्कालीन लकड़ी और छाजन के गृहो की प्रस्तराकित प्रतिकृति है। द्वार, झुके हुए बाजू, मेहराब, खुदे हुए गजो के अलकरण सभी इस ओर सकेत करते है।

यह भी निश्चय जानना चाहिये कि हमारे प्राचीनतम गुफा-भवन जो बौद्धों के पूजागृह थे, चैत्य कहलाते थे और पुराने स्वतंत्र गृहो के अनुकरण में बने थे, जोकि लकडी के होने के कारण अब लुप्त हैं, लेकिन जिनकी प्रतिकृतियां इन विशाल गुफा भवनो से मिलती है। बल्कि पत्थर में खोदे हुए भवनो मे, पुराने नमूनो के अनुकरण मे, लकडी के बहुत से सामान बाद में लगा दिये जाते थे। ऐसे गुफाभवन या चैत्य देश में अनेक स्थलो पर मिलते है। लेकिन उनका कदाचित् सब से पुराना नमूना हमें पश्चिमी घाट के भाजा के गुफा-चैत्य में मिलता है। इस चैत्य का निर्माण ईसा के पहले की दूसरी शताब्दी के आरम्भ में हुआ था। सभी चैत्य प्राय एक ही नमूने पर बनते रहे। इनमें बीच में एक लम्बी भूमि आराधको के बैठने के लिये होती थी, दोनों ओर किनारो पर ऊचे खभो की कतारें होती थी। प्रवेशद्वार के सामने के छोर पर प्रदक्षिणा के लिये मार्ग छोडते हुए स्तूप बने होते थे, और जिस छोर पर स्तूप होता उस भाग को अर्द्धवर्तुल रूप में समाप्त किया जाता। निर्माण इस तरह होता कि पहले वह भाग जोकि सम्मुख बनाया जाता खडी सपाट दीवार के रूप में पत्थर में काट लिया जाता। इस चिपटी सपाट दीवार पर प्रवेशद्वार खीच दिया जाता और उसके ऊपर एक विशेष झरोखा होता। फिर जितना ऊचा भवन बनाना होता उतने ऊचे पर सुरग खोदी जाती, जो मलबा गिरता वह प्रवेशद्वार से बाहर फेंक दिया जाता। बडे सधे हुए कारीगर ही ऐसा कर सकते थे। धीरे धीरे बीच की जगह साफ हो जाती, फिर किनारे के खभो, स्तूप आदि को गढ कर निकालने का काम होता। आरम्भ के चैत्यो में जोकि हीनयान सम्प्रदाय के उपासको के गृह थे, अपेक्षाकृत अलकरण पर कम ध्यान दिया गया, बाद में महायान उपासना की प्रवृत्ति के साथ अलकरण की ओर प्रवृत्ति हुई। हीनयान काल का सब से बडा गुफा-चैत्य हमें कार्ली में मिलता है, जो भाजा के निकट ही है। अन्य चैत्यों से यह इस बात में कुछ भिन्न है कि इसका सम्मुख नक्काशीदार पत्थर का है और इसकी कला बड़ी चमत्कारी है। सारा भवन हाथियों की पीठ पर रुका हुआ सा जान पडता है। इन हाथियो को आरम्भ मे धातुओ के

जेवर पहनाये गये और इनमें सच्चे हाथी दात लगाये गय थे। इसके भीतर की मूर्तिकारी वाद की है, जबकि यह चैत्य महायानियो का उपासनागृह वना। इसकी विशालता का अनुमान इससे होता है कि इसकी भीतर की लवाई १२४ फ़ुट है और चौडाई ४६-४७ फुट है।

वाद के अजन्ता के गुफामन्दिरो की ख्याति तो लोकव्यापी है। सह्याद्रि की घाटी में, मानवीय मार्गों से हट कर गुफाओ की एक माला ही है जो विभिन्न कालो में वनी है, और जिनमें कुछ अधूरी रह गई है। इनमें हमें उत्कृष्ट मूर्तिकला के नमूने तो मिलते ही है, यहा की चित्रकारी ने जोकि एक विशेप टेकनीक या शैली में हुई है, अपनी अनुपम उत्कृष्टता के कारण सारे ससार का ध्यान आकृष्ट किया है। इन गुफाओ के निवासी भिक्खु वडे कलाकार थे और बुद्ध भगवान के जीवन की गाथाए हमें यहा अमर रूप में चित्रित मिलती है। चित्रकारी की दृष्टि से हमें वाघ और वादामी की गुफाओ को भी न भूलना चाहिये।

ये गुफामदिर, जैसा वताया गया, देश भर में फैले थे और केवल वौद्ध सप्रदाय के ही नही थे। उडीसा के अनेक गुफाभवनो में, सुन्दर मूर्तिकला से अलकृत, खड-गिरि की रानी-गुफा है जिसका सम्वन्ध जैन धर्म के उपासको से है। यह भी ईसा से पहले की पहली-दूसरी सदी की है। फिर शैवधर्म से सम्वन्धित दक्षिण में एलोरा का प्रसिद्ध कैलाशनाथ मदिर है जिसे राष्ट्रकूटो ने ८वी सदी में वनवाया था और जिसकी विशालता इस प्रकार की निर्माणकला का अन्यतम उदाहरण प्रस्तुत करती है। इस शृ खला का अन्तिम विशाल मन्दिर वम्वई के निकट एलिफेंटा टापू में है जो लगभग इसी काल का है। सोलहवी सदी में पुर्तगालियो द्वारा यह विध्वस्त हुआ फिर भी यहा अनेक भीमकाय दर्शनीय मूर्तिया हैं, जिनमें सवसे विख्यात शिव की विशाल त्रिमूर्ति है।

१५

मंदिर और मकबरे

अपने देश में स्थापत्य की कहानी बडी पुरानी है। फिर अपने देश का विस्तार इतना है कि इसे कई देशो का समूह कहा जा सकता है। स्पष्ट है कि हमारे यहा इमारतो और विशाल भवनो की कोई कमी नही है। इनके विकास की अपनी कहानी है। इतिहास के अनेकानेक परिवर्तनों से यह प्रभावित हुई है। लेकिन जो मुख्य प्रभाव इस पर रहा है वह धर्म का है। धर्मो का समन्वय अपने यहा वहुत प्राचीन काल से होता रहा है, और इस प्रक्रिया की छाप हमें अपने पुराने मदिरो और समाधियों या उन के अवशेषो में मिलेगी।

बौद्धकाल से पहले के मदिरो या समाधियो के कोई ऐसे अवशेष हमें नही मिलते जिनकी चर्चा की जा सके। हडप्पा और मोहेजोदडो की खदाइयो से हमें सिंधु-घाटी की अव से पाच हजार वर्ष पुरानी सभ्यता के चिन्ह मिलते हैं। यह सभ्यता आर्यो के आने से पूर्व की सभ्यता थी। हमें इस नागरिक सभ्यता में घरो, गोदामो, स्नानागारो, दुराहो, कुओ के चिन्ह तो मिलते है, लेकिन यह नही कहा जा सकता कि उस समय ऐसे पूजाभवन होते थे जिनमें सामूहिक रूप से लोग उपासना पूजा के लिये एकत्र होते रहे हो। अनमान किया गया है कि अधिकतर घरो में ही पूजा के कक्ष हुआ करते थे। वैदिक काल के, अर्थात् ईसा से पूर्व लगभग १५०० वर्ष के भी कोई अवशेष मदिरो या पूजागृहो के नही मिलते, यद्यपि वेदो में हवनकुड और पूजागृहो के वर्णन आए हैं। इसका कारण यह जान पडता है कि उस समय मिट्टी, वास अथवा लकडी के भवन वनते थे जो नष्ट हो गये है।

मौर्यकाल में अपेक्षाकृत टिकाऊ सामग्री से भवनो के निर्माण की प्रवृत्ति हुई। पत्थर उपयोग में लाया गया, यद्यपि अव भी लकड़ी का वहुतायत से उपयोग होता था। अशोक के समय से पहाड़ो को काटकर गुफाओ और गुफा-मन्दिरो के वनाने पर ध्यान गया। यह अधिकतर वौद्धो के पूजागृहो या चैत्यो के रूप में हुआ,

जिनके केन्द्रीय आकर्षण स्तूप हुआ करते थे। इन स्तूपो में धार्मिक पुरुषो की राख अथवा नख, केश ऐसे चिन्हो पर समाधिया वनती थी। एक तो उस का रूप वह था जो हमें साची के विशाल स्तूप में मिलता है, दूसरा वह है जो हमें वेदसा, नासिक भाजा, कार्ली, अजन्ता आदि के गुफा-मन्दिरो में मिलता है। यह वौद्ध गुफा-मन्दिर (वास्तव में हमें जैन और वाद में शैव गफामन्दिर भी मिलते हैं) भारतीय निर्माण कला के अद्‍भुत उदाहरण हैं और यह अपने विकास के साथ न केवल मूर्तियो और चित्रो, भित्ति-चित्रो से अलकृत होते रहे हैं, वल्कि सारे ससार में अपने ढग के अद्वितीय पूजागृह हैं।

ब्राह्मण धर्म या हिन्दूधर्म की उपासना का रूप ईसा के जन्म के समय स्थिर हो चुका था। हिन्दू-मन्दिरो का सर्वप्रथम रूप साची के स्तूप की एक मूर्तिकारी से मिल जायगा और अजन्ता की एक गुफा में एक स्तूप पर भी साकेतिक रूप में मिलेगा, जहा वुद्ध की प्रतिमा वनी है। हिन्दू मन्दिरो की अपनी चार विशेषताए थी—गर्भगृह जहा पूजा की मूर्ति होती थी, शिखर, आगे का मडप और प्रदक्षिणा पथ। छठी सदी ईस्वी तक हिन्दू मन्दिरो के तीन प्रकार विकसित हो चुके थे, जो क्रमश नागर, द्राविड और वेसर के नामो से जाने जाते हैं। इनमें नागर और द्राविड शैलियो के मन्दिरो में तो शिखर होते हैं, वेसर शैली के मन्दिरो की छते चैत्यो की छतो जैसी लवी मेहरावदार होती हैं और इनके उदाहरण महावलीपुर के रथमन्दिरो में मिलेगे। नागर शैली के मन्दिर उत्तरी भारत में फैले हुए मिलेंगे, जहा कि विष्णु की उपासना प्रधानतया होती है। इसके शिखर वर्तुलाकार होते हैं और उनके ऊपर आमलक के चिन्ह तथा सव से ऊपर कलश होते हैं। भुवनेश्वर, कोणार्क तथा पुरी में, उडीसा में ऐसे अनेक मन्दिर मिलते हैं जो आठवी से तेरहवी सदी के वीच के हैं, इन में परशरामेश्वर, कोणार्क के सूर्य मन्दिर और लिगराज के मन्दिर विशेष प्रसिद्ध हैं। नागर शैली का सूर्यमन्दिर, जोधपुर के पास के ओसिया स्थान का भी प्रसिद्ध है और फिर खजराहो के १०वीं ११वी सदी के विशाल मन्दिर हैं जिनमें कडरिया महादेव का मन्दिर सवसे प्रसिद्ध है। नागर शैली के मन्दिर वरावर वनते आए हैं और काशी का विश्वेश्वर मदिर (१८ वी सदी), ग्वालियर का सिंधिया की माता का मन्दिर (१९वी सदी) उसके नवीनतम विकास के उदाहरण हैं। राजपूताना में आवू के जैन मन्दिरो में भी इसी शैली के विकास के उदाहरण मिलते हैं।

द्राविड शैली के शैवमन्दिर अपनी विशालता के लिये प्रसिद्ध है । आठवीं सदी के आरम्भ का प्रसिद्ध काचीपुरम् मन्दिर है, यद्यपि इससे पहले के शैव गफा-मन्दिर उत्तरी अर्काट और तिरुचिरपल्ली में मिलते है । पल्लवो और चोलो के राज्यकाल में इनका विकास होता रहा । विमान, तोरण, देवगोष्ठ और गोपुरम् इनकी विशेषतायें है । चालक्यो की वास्तुकला में उत्तरी और दक्षिणी शैलियो के मेल की ओर प्रवृत्ति है और स्तम्भो तथा अन्य अगो के हमें नए-नए विकास मिलते है और नीचे से ऊपर तक वारीक मूर्तिकारी मिलती है। इस प्रकार के मन्दिर इत्तगी, सोमनाथपुर, वेलूर और इलेविद में मिलेगे ।

हमारी वास्तुकला ने मसलमानो के समय में एक नवीन विकास प्राप्त किया । १२वीं सदी में मसलमान सीरिया, मिस्र, उत्तरी अफ्रीका और ईरान से नई प्रेरणायें लाए । पहले तो उन्होने यहा के प्राचीन मन्दिरो में परिवर्तन करके उन्हे अपने उपयोग के लायक वनाया, लेकिन क्रमश उन्होने अपनी इमारते और मकवरे खडे किये, जोकि ज्यामितिक पूर्णता और सादगी के लिये प्रसिद्ध है। उनकी पूजा-शैली भिन्न थी, अलकरण के लिये उसमें गुजाइश नही थी । उनकी अनेक इमारतो में शायद सवसे पहली कुतुवमीनार है जिसे कुतुवुद्दीन ऐवक ने ११९१ में, मुअज्जिन की अज़ान के लिये वनवाया । प्रातीय राजधानियो में भी अनेक निर्माण होते रहे और वीजापुर में तथा गौड में और जौनपुर में अनेक विशाल मसजिदें तथा भवन वने, साथ ही गुजरात में १४वी शताव्दी में एक अलग शैली विकसित हुई । वीजापुर की आदिलशाही जमा मसजिद, मुहम्मद शाह का मकवरा, सहसराम में शेरशाह का मकवरा, हुमायू का मकवरा, आगरा का किला और उसकी विविध इमारते, फतेहपुर सीकरी के निर्माण तथा वुलन्ददरवाजा और फिर आगरे का ताजमहल—ये सभी विकास के मार्ग चिन्ह हैं । कदाचित ताज के मकवरे में मुसल-मानी वास्तुकला अपनी चरम सीमा पर पहुची—यद्यपि इससे पूर्व के उसके कारनामे कम चमत्कारी नही है । फिर भी ताजमहल ससार के वास्तुकला के अनेकानेक उदाहरणो में एक ऐसा हीरा है जिसका आकर्षण कभी कम नही हो सकता, और जिसने मानवीय प्रेम को 'एक अमरत्व देने का प्रयास किया है ।

१६

कुछ विस्मृत नगर

भारत के लम्बे इतिहास और भौगोलिक विस्तार को देखते हुये कौन कह सकता है कि सदियो, सहस्राब्दियो की गति के साथ कितनी क्रातिया हुई, क्या-क्या परिवर्तन आये, कौन-कौन राज्य वने और विगडे और इसी प्रकार कितने नगरो का निर्माण हुआ और कितने ध्वस्त हुये। अपने विस्मृत नगरो के पूरे-पूरे इतिहास हमें नही मिलते, इतिहास तो क्या हम सबके नामो और उनकी सख्या से भी अपरिचित है। प्राचीन साहित्य में कुछ नाम अवश्य आते है, उनमें से कुछ की भौगोलिक स्थिति ज्ञात हो सकी है, कुछ की अनुमानित है, वहुतो की अज्ञात भी है। पुरातत्वविदो ने जहा तहा खुदाई करके, ईट रोड़ो को एक प्रकार से वाच कर, उनके सम्वन्ध में कुछ धारणायें स्थिर की है। फिर भी यह निश्चित है कि जितना हमें मालूम हो सकता है उससे कही अधिक विस्मृति के गर्त में लुप्त हो चुका है। यहा पर हम केवल कुछ प्रतिनिधि नाम ले सकते है और उनके वारे में दो-दो शब्द कह सकते ह।

प्रयाग के सन्निकट झूसी, जिसका पुराना नाम प्रतिष्ठानपुर है, एक अत्यत प्राचीन नगर था। कई पुराणो में इसका वर्णन आया है। कहते है कि मनु-पुत्री इला के पुत्र चन्द्रवशी पुरुरवा ने इसे अपनी राजधानी वनाया था। महाभारत के उद्योग पर्व में यहा के राजा ययाति की चर्चा है। यही का राजा पुरुरवा कालिदास के नाटक 'विक्रमोर्वशीयम' का नायक है। यह सब पौराणिक परम्परा के अनुसार है। इसका इतिहासकालीन वृत्त वहुत कम ज्ञात है, परन्तु गुप्त काल में कदाचित इस स्थान की प्रतिष्ठा थी और यहा का समुद्र-कूप कहते है, समुद्रगुप्त ने खुदवाया था। अनेक दन्त कथायें प्रचलित हैं। कहते हैं यहा गोरखनाथ और उनके गुरू मत्स्येन्द्र रहेथे। किसी हरवेंग राजा के समय में यहा इतना अधेर खाता चलता था कि इन गुरूओ के शाप से झूसी पलट गई।

प्रयाग—मडल में ही एक दूसरा प्राचीन स्थान है कौशावी। यह नगरी प्राचीन महाजनपद वत्स की राजधानी थी। पुरुरवा की दसवी पीढ़ी में राजा कुशाव

द्वारा बसाई हुई कही जाती है। पाणिनि के सूत्र और महाभाष्य में इसका नाम आया है। कथासरित्सागर में इसको महापुरी कहा है। यह ऋषि कात्यायन की जन्मभूमि के नाम से भी प्रसिद्ध है। बौद्ध काल में यह प्रख्यात नगरी थी। भगवान बुद्ध यहा पधारे थे। उनके समकालीन यहा के राजा उदयन हमारे साहित्य में विश्रुत है और कई नाटको के प्रधान पुरुष है। उन्होंने, कहा जाता है कि, भगवान बुद्ध की पहली प्रतिमा चन्दन-काष्ठ की बनवाई थी। पुराणो में इस नगरी की चर्चा हुई है, 'महावस' और 'ललित विस्तार' नामक बौद्ध ग्रंथो में इसे भारत के १६ बडे नगरो में गिनाया गया है। यहा श्रेष्ठियो की अट्टालिकायें थी, भिक्खुओ के सघाराम थे और यहा की जनता कलाप्रेमी और सपन्न थी। फाहियान ने यहा के 'गोशिरावन' की चर्चा की है और हुएनसाग ने राजधानी का घेरा ३० मील के फैलाव में बताया है। उसने १० उजडे हुये सघारामो और ४० देव मदिरों की चर्चा की है।

इसी प्रदेश में और भी अनेक विस्मृत नगर स्थित थे। इनमें तीन विशेष उल्लेखनीय है। गोंडा जिले में सहेत-महेत है जिसका पुराना नाम श्रावस्ती था। यह उत्तर कोशल की राजधानी थी। सूर्यवशी राजा श्रावस्त ने इसे बसाया था, ऐसा वायु पुराण में लिखा है, वहा यह भी बताया है कि रामचन्द्र ने अपने राज्य को बाटते हुये इसे लव को दिया था। बुद्ध के समय में यहा का राजा प्रसेनजित था जिसने राजगिरि में बुद्ध से मिलकर दीक्षा ली थी। रुहेलखड में, बरेली से ३० मील पश्चिम, अहिच्छत्र था जो अब रामनगर गाव है। यह उत्तरी पाचाल की समृद्ध राजधानी थी। महाभारत मे इसे छत्रवती और अहिक्षेत्र भी कहा है और जैन ग्रथो में भी इसका वर्णन आया है। यहा की खुदाई में गुप्तकाल की सुन्दर मृन्मूर्तिया मिली है जिससे पता चलता है इस काल तक इसकी समृद्धि बनी रही। फिर एटा जिले में, कन्नौज से ४५ मील पश्चिमोत्तर सकाश्य या सकीसा है जो राजा कुशध्वज की राजधानी थी। बौद्धो का भी यह पवित्र स्थान रहा है और कहा गया है कि यहा बुद्ध भगवान का त्रयस्त्रिश स्वर्ग से सोने की सीढियो द्वारा अवतरण हुआ था। फाहियान और हुएनसाग ने यहा की यात्रा की थी और यहा अशोककालीन स्तूप है।

बिहार राज्य मे भी अनेक प्राचीन नगर थे जो अब ध्वसावशेष मात्र है। वैशाली, मुजफ्फरपुर जिले में, वृज्जियो या लिच्छवियो की

राजधानी थी। 'ललित विस्तार' से पता चलता है कि यहा का शासन जनतन्त्री था। कहते हैं यहा से २ मील की दूरी पर बुद्ध भगवान ने महावन में निवास किया था। इसी जगह अम्बपाली ने बुद्ध को आम्रवन भेंट किया था। बौद्ध साहित्य में इस स्थान का अनेकश वर्णन आया है।' यह बहुत समृद्ध और सम्पन्न नगर था जिसका रहने-सहने का स्तर ऊचा था। पटना जिले में राजगिरि से सात मील पश्चिमोत्तर में नालदा नाम की प्रसिद्ध नगरी थी जो तेरहवी शती ईस्वी तक शिक्षा का एक प्रधान केन्द्र थी। यह स्थान अब बरगाव कहलाता है, जो विहार ग्राम का अपभ्रंश है। यहा एक बडा विहार भी था। दूर-दूर देशों से यहा विद्यार्थी अध्ययन के लिये आया करते थे। यहा हुएनसाग और इत्सिग चीनी यात्रियों ने रह कर विद्याभ्यास किया था। यहा की आधुनिक खुदाई में बहुत सी सास्कृतिक और कलात्मक सामग्री प्राप्त हुई है जिसमें अनेक सुन्दर कास्य प्रतिमायें हैं। प्राचीन अग की राजधानी चपापुरी भी आज एक विस्मृत नगरी है। यह भागलपुर से चार मील पश्चिम की ओर स्थित थी। मत्स्य पुराण में इसका और भी प्राचीन नाम मालिनी कहा है। महाभारत में इसे लोमपाद की राजधानी बताया है। बौद्धकालीन अवशेप भी यहा बहुत से मिले हैं। यहा पर दुर्ग की बाहरी दीवारो के अवशेष दिखते हैं। हुएनसाग यहा भी आया था। यहा जैनियो के भी पवित्र स्थल हैं। महावीर ने यहा तीन चतुर्मास बिताये थे। अब भी यहा कुछ जैन मदिर हैं। बुद्ध के समय में चम्पा छ प्रसिद्ध नगरो में था अन्य पाच थे राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और काशी। यह नगरी चम्पक वृक्षो से भरी हुई थी और यहा पर कई राजप्रासाद थे।

जिन विस्मृत नगरो की चर्चा हुई है उन्हें आकस्मिक रूप से चुना गया है। यो वैराट और बेसनगर, नागरी और माहिष्मती, वाणापुर और त्रिपुरी, देवगिर और राजगिरि, द्वारसमुद्र और वेंगी, वातापी और धनकटक, ताम्रलिप्ति और अनहिलपत्तन, पाडुआ और लखनौटी, आदि आदि अनेक नगरो के नाम लिये जा सकते हैं जो सारे देश में फैले हुये थे और जो अब काल-कवलित हो चुके हैं। इनके ध्वसावशेष मात्र मिलते है, पर कहीं वे भी नही मिलते, केवल उनके नाम प्राचीन साहित्य में रह गये हैं।

१७

चित्रकला

भारतीय चित्रकला के सबसे पुराने नमूने हमें अजता के वौद्ध गुफामंदिरो में मिलते है। यह स्थान दक्षिण भारत मे औरगाबाद से लगभग ६० मील की दूरी पर है। जन कोलाहल से दूर, सह्याद्रि की घाटियो में, पहाडो को काटकर पुराने बौद्ध भिक्षुओ ने अपने रहने के लिये और पूजा उपासना के लिये इनका निर्माण किया था। यहा हमें भारतीय प्रस्तरकला और मूर्तिकला के अनुपम उदाहरण मिलेंगे, लेकिन जिन कृतियो के लिये अजन्ता आज लोक विश्रुत है, वे कृतियां हैं इन गुफाओं में से अनेक की चित्रकारी। घोडे के नाल जैसे पहाडों में यहा २६ गुफायें और चार चैत्य पहाडों को काट कर बने है। इनकी दीवारो और छतों पर घनी चित्रकारी हुई है। ये चित्र कई सदियो के बीच बने है, सबसे पुराने ईसा से पूर्व की पहली सदी के है, लेकिन सबसे विशाल कृतिया कदाचित गुप्तकाल की है जो अपने देश का स्वर्णकाल कहलाता है। समय और मनुष्य द्वारा किये गये विनाश के चिन्ह यहा स्पष्ट हैं। कुछ ही गुफाओ की चित्रकारी सुरक्षित है, लेकिन जो कुछ बच रहा है वह रेखाकन और रगो की भरन की दृष्टि से इतना सुदर, इतना अनुपम, इतना सजीव है कि उससे भारतीय चित्रकार आज भी प्रेरणा ले सकते है और लेते हैं। भारतीय ही नही, समस्त प्राच्य कलाकृतियो में अजता की चित्रकारी अद्वितीय है। इन भित्तिचित्रो में अधिकतर जातक कथायें चित्रित है जो कि भागवान बुद्ध के जीवन की तथा उनके पूर्व जन्मो की कथायें है। यद्यपि यहा की चित्रकारी उपलब्ध भारतीय चित्रकारी में सबसे प्राचीन है फिर भी यह विकसित कला है, जिसमे कि प्राचीन कलावतो का कला परिपाक लक्षित होती है, और जो इससे भी पूर्व भारतीय चित्रकला के अस्तित्व का सकेत करती है। भित्तिचित्र बौद्ध कला ही की विशेषता नही है। बादामी और बीजापुर की गुफाओ में हमें ब्राह्मण धर्म के विषयों के चित्रण मिलेंगे, यहा शिव और पार्वती की कथा के अनेक प्रसंग चित्रित हैं। यह चित्रकारी छठी सदी की है। सातवी और आठवी सदी के चित्र हमें पुदुकोटा के निकट सित्तनवासल

के भित्तिचित्रो में मिलेंगे और इनके विषय जैन हैं। हमें एलोरा की गुफा में भी चित्र मिलते हैं, ये भी आठवी सदी के हैं। इनमें शिव की कथायें तथा विष्णु के अवतार चित्रित हुये हैं और भारतीय चित्रकला के ये भी कुछ अन्यतम उदाहरण माने जाते हैं। फिर भी अजता की रेखाओ की पटुता यहा ढल चली है। भित्तिचित्र अपनी रेखायें नवी सदी तक खोने लगते हैं।

इस बीच छोटे, ताडपत्रो के ऊपर बने चित्रो का चलन हो चला और हमें इसके उदाहरण नवी से बारहवी सदी के बीच की, बगाल की पालकालीन पाडुलिपियो में मिलेगे। इन चित्रो के विषय अधिकतर बौद्ध कथायें हैं। लोहे की कील से, अक्षरो की भाति ही यह ताडपत्र पर काटे जाते थे और उनमें रग भी भरे जाते थे। ताडपत्रों पर लिखे ग्रथो के विषयो को यह सीधे साधे ढग से चित्रित करते थे। और इन ग्रथो के लकडी के वेठन भी लाख के रगो में चित्रित होते थे। भारतीय लघु चित्रो के विकास की हमें यहा पहली कडी मिलती है। इसी प्रकार ग्यारहवी से पद्रहवी सदी के बीच के हमें गुजराती चित्र मिलते हैं जो प्राय धर्म ग्रथो को चित्रित करते हैं। प्रारम्भ में यहा भी ताडपत्र प्रयोग में आया है किन्तु लगभग चौदहवीं सदी में कागज प्रयोग में आने लगा था। जैन शैली देखने में कुछ अनगढ प्रतीत होती है लेकिन इसकी अपनी विशेषतायें तथा आकर्षण हैं। इस शैली के सबसे कलात्मक उदाहरण उस सक्राति काल के हैं जब कि ताडपत्र को छोड कर कागज के पट व्यवहृत होने लगे थे। अधिकतर यह चित्र जैन कल्प-सूत्रो को चित्रित करते हैं। रगो की भरन के साथ इनमें सोने के वर्को का भरन होता था। बाद में अनेक वैष्णव ग्रथो के चित्रण इसी ढग में होने लगे थे और कुछ ऐसे भी चित्र मिलते हैं जिनके विषय धार्मिक नही हैं।

सोलहवी सदी के आरम्भ होते-होते, इन मध्ययुगीन चित्रो का समय भी बीत चला था। अब राजस्थानी लघु चित्रो का चलन होता है। वास्तव में गुजराती चित्र अजता के भित्ति-चित्र और राजस्थानी चित्रो के बीच की कडी हैं। राजस्थानी चित्रो का न केवल भारत की कला में बल्कि ससार की चित्रकला में अपना एक स्थान है। यह जन जीवन से उद्भूत है और इनका मुख्य विषय प्रेम है। राजस्थानी चित्र वस्तुत गीति काव्य की कोटि के हैं। इनके रग चटक हैं। लोक-जीवन का ऐसा कोई पहलू नही है जिसे इन्होंने अछूता छोडा हो। राजस्थानी कला में महाभारत और रामायण की कथाओ के अनेक चित्र प्रस्तुत

हुये हैं। इन चित्रकारो का एक प्रिय विषय है राग-माला अथवा राग-रागिनियों का कल्पित चित्रण। यह कल्पनायें प्रायः रूढि ग्रहण किये हुये हैं फिर भी उपलब्ध चित्रो में अद्भुत विशेषता है। राजस्थानी चित्रकला के प्रचुर उदाहरण मिलते है और जान पडता है कि सोलहवी और उसके बाद की सदियो में राजस्थानी चितेरो में प्रेरणा की लहर सी आ गई। वस्तुत जन जीवन से अनुप्राणित होने के कारण इन्हें एक ऐसा स्रोत मिल गया था, जिसके सूखने का कोई भय न था। सोलहवी सदी के चित्रो में अपेक्षाकृत सादगी है। बाद की सदियो में प्रौढता का और निखार मिलता है। सत्रहवी से उन्नीसवी सदी के बीच राजस्थानी कला फैलकर पश्चिमी हिमालय के प्रदेशो में पहुची और यहा के वातावरण में इसे एक नव जीवन मिला, इसने एक सौंदर्य ग्रहण किया। यहा के चित्रो के विषय भी अधिकतर रामायण और कृष्ण कथा से लिये गये हैं। विशेषकर कागडा के चित्रकारो ने नारी सौंदर्य का एक ऐसा रूप अपनाया है जो अपनी कोमलता और अपनी विशेष सुरभि के लिये अनुपम है। पहाडी चित्रकला और राजस्थानी चित्रकला मे प्रधान पुरुषो विशेषकर शासको की शबीहें भी बनने लगी थी। यह अधिकतर मुगल प्रभाव के कारण थी।

भारतीय मुगल कलम के सम्बन्ध में भी दो शब्द कहना आवश्यक है। यह कलम मुगल शासको के प्रश्रय मे पनपी। इसका विषय धार्मिक नही होता था। यह बादशाहो के आमोद के लिये होती थी अथवा उनके प्रधान अमीरों के लिये। इस पर ईरानी परम्पराओ का प्रभाव था। शबीहें, दरबार के दृश्य, शिकार के दृश्य, फूलपत्ती, पक्षी आदि इस कलम के मुख्य विषय रहे है। कुछ ईरानी कथाओं के भी चित्रण हुये है। इस कलम के प्रारम्भिक चित्रकार ईरानी अवश्य थे लेकिन उन्होने भारतीय चित्रकारो को सिखाया और इस क्रिया में उनकी शैली भी बदल कर, कह सकते है, भारतीय होती गयी। विशेषकर इस शैली में शबीहो के चित्रण को कमाल तक पहुचाया गया है।

उन्नीसवी सदी का अन्त होते-होते इस शैली का और इसकी प्रशाखाओं का ह्रास हो गया। पाश्चात्य सम्पर्क में कुछ भारतीयो ने भी तैल चित्र बनाये। इनमें सबसे प्रसिद्ध चित्रकार रवि वर्मा थे। लेकिन बीसवी सदी के आरम्भ में बंगाल में जो नवजागृति हुई उसके फलस्वरूप भवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने पुरानी भारतीय परपराओ को कुछ अपने ही ढग से जगाया। उन्होने न केवल प्राचीन भारतीय

परपराओ को अपनाया वल्कि चीनी और जापानी स्रोतो से भी प्रेरणा प्राप्त की। उन्हें वडा सघर्ष करना पडा लेकिन अन्तत उन्होने विजय पाई और उनकी शैली मान्य हुई और देश भर में फैली। अव क्या प्राच्य और क्या पाश्चात्य सभी प्रभावों को अपनाते हुये चित्रकार मैदान में आये हैं। सवसे प्रमुख नये प्रयोग करने वालो में यामिनी राय और अमृता शेरगिल हैं, और यामिनी राय ने अपनी प्रेरणा वगाल के ग्रामीण पटुआ चितेरो से प्राप्त की। वर्तमान युग प्रयोगो की विविधता का युग है।

१८

हमारे संग्रहालय

१९३६ में न्यूयार्क के कार्नेगी कार्पोरेशन की सहायता से लदन के म्यूजियम एसोसिएशन ने भारतीय सग्रहालयो की एक पडताल प्रकाशित की थी। यह एक पुस्तक के रूप में थी जिसका नाम था 'दि म्यूजियम्स आफ इडिया' और मार्खम तथा हार्ग्रीव्ज जैसे विशेषज्ञ तथा पुरातत्वविद् इसके लेखक थे। इन्होने अपनी पुस्तक में १०५ सग्रहालयों के ब्योरे दिये हैं। गिनाने के लिये अपने देश में छोटे-मोटे निजी सग्रहालय लिये जायें तो सख्या बढ जायेगी। एक बात स्मरण रखने की है। इनमें से १०-११ सग्रहालय अब पाकिस्तान में है। इस प्रकार भारत के संग्रहालयो की सख्या फिर भी ९४-९५ है। हमारा इतना बडा देश है, उसे देखते हुये यह सख्या बडी नही है। बल्कि यह सख्या बहुत थोडी है। १९३६ की पडताल के अनुसार ही जब स्वीडन में ३८,४०० जन सख्या के पीछे एक सग्रहालय है, स्विट्जरलैण्ड में ४२,६०० पीछे १, और ब्रिटेन, फ्रास, अमेरिका, रूस, जापान में क्रमश. ६३,०००, ६४,००० ९१,०००, १,५०,०००, और ४,२०,००० पीछे एक सग्रहालय है, भारत में ३४,२०,०००जन सख्या पीछे एक सग्रहालय है। इन ९४-९५ सग्रहालयो में से भी अनेक ऐसे है जो कि विविधि सामग्री प्रदर्शित करते है, प्राणिशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, कला और उद्योग, कृषि, वन सम्बन्धी, चिकित्सा-सम्बन्धी आदि अनेक सग्रहालय हैं। यहा पर मै केवल पुरातत्व और कला सम्बन्धी कुछ प्रमुख सग्रहालयो की चर्चा करूगा।

उत्तर प्रदेश में ५ बडे सग्रहालय है। लखनऊ का सग्रहालय, जो कि १८६३ ई० के लगभग स्थापित हुआ था, दो अलग-अलग भवनो में है। एक में जो केसर-बाग में है, मुख्यतया प्रस्तर-मूर्तियो का विशाल सग्रह है जो शुगकाल से मध्यकाल तक की है, दूसरे भवन मे विविध वस्तुओ के साथ पुराने चित्रो, पाडुलिपियो मूर्तियो और मुख्यतया सिक्को का सग्रह है। पचमार्कड, गुप्त और मुगल-कालीन

० में स्थापित हुआ था। यह भी अपने देश के प्रसिद्ध सग्रहालयो में है। बौद्ध, ब्राह्मण तथा जैन मूर्तियो का यहा अपूर्व सग्रह है जो मौर्य, शुग, कुशान, गुप्तकाल से लेकर मध्ययुगीन है। मृन्मूर्तियो का भी यहा अच्छा सग्रह है। सारनाथ का सग्रहालय १६०४ में स्थापित हुआ। यहा स्थानीय खुदाई से प्राप्त मूर्तिया तथा अन्य वस्तुएँ १२,००० से ऊपर सख्या में सग्रहीत है, यह भी मौर्य काल से गुप्त काल तक की हैं। अशोक की प्रसिद्ध लाट का शिरोभाग, जिस पर चार सिंह है, और जो अब अपने देश की सरकार का चिन्ह बन गया है, इसी सग्रहालय में सुरक्षित है। बनारस के कला भवन में जो १६२६ में स्थापित हुआ है और जो अब हिन्दू यूनिवर्सिटी के प्रबन्ध में है, पुरातत्व की अनेक मूल्यवान सामग्री के साथ चित्रो का, विशेषकर मुगल चित्रो का एक अमूल्य सग्रह है। इलाहाबाद सग्रहालय जो १६३१ में स्थापित हुआ, इनमें सबसे नवीन होते हुये भी मूर्तियो और चित्रो दोनो से सम्पन्न है। कौशाम्बी की मूर्तियो, मनको, मृन्मूर्तियो तथा सिक्को का यहा भन्डार है और राजस्थानी चित्रो का बडा सग्रह है।

बिहार के केवल दो सग्रहालयो की चर्चा करूगा। पटना सग्रहालय १६१७ में स्थापित हुआ, परन्तु इसने अद्भुत उन्नति की। आज इसका सग्रह एक विशाल भवन में सुरक्षित है। अधिकतर बिहार की खुदाइयो से प्राप्त यहा मूर्तिया और मृन्मूर्तिया हैं, पाटलिपुत्र, बक्सर, बसाढ आदि की। परन्तु इसका साधारण पुरातत्व सग्रह भी बृहद है। तिब्बती चित्रो या टको का यहा सग्रह इतना बडा है कि तिब्बत से बाहर ऐसा दूसरा सग्रह नही कहा जाता। नालन्दा का सग्रहालय १६१७ में स्थापित हुआ और स्थानीय खुदायी की वस्तुओ का यहा एकत्रीकरण हुआ है। इनमें पत्थर की मूर्तिया, मृन्मूर्तिया, कासे की मूर्तिया, मिट्टी की मुद्राये, मुद्रायें, नक्काशी की ईटें, हाथी दात पर अकित लेख, प्राचीन काल में व्यवहार की अनेकानेक वस्तुयें है। कासे की मूर्तियो का यहा अपूर्व सग्रह है।

पुरातत्व की दृष्टि से आसाम में गौहाटी की कामरूप अनुसधान समिति के और उडीसा में कटक के रैवेंशा कालेज के सग्रहो के नाम लिये जा सकते हैं।

कलकत्ते का प्रसिद्ध सग्रहालय बगाल की एशियाटिक सोसायटी की देन है। यह १८१४ में स्थापित हुआ और इसका अपना विशाल भवन चौरगी में है।

इसमें पुरातत्व के अतिरिक्त अनेक विभाग हैं। सारे देश की वस्तुओ के नमूने और नेपाल, तिब्बत और दक्षिण भारत की कासे की मूर्तियो का सग्रह मिलेगा। प्राचीन भारतीय सिक्को का ससार में सबसे समृद्ध सग्रह यहा है। मथुरा, अमरावती, भुमरा, सारनाथ, विहार, वगाल की मूर्तिया है जो ई० पू० तीसरी सदी से १३ वी सदी ई० तक के इतिहास पर प्रकाश डालती है। कलकत्ते के विक्टोरिया मेमोरियल हाल में ब्रिटिश शासन से सम्वन्धित तैलचित्रो, छापो, मूर्तियो, ऐतिहासिक रिकार्डों का सग्रह है।

मद्रास के राजकीय सग्रहालय का आरम्भ १८१६ में हुआ। १८५४ में यह पेंथियन रोड के अपने विशाल भवन में स्थापित हुआ। दक्षिण भारत का यह एक प्रमुख सग्रहालय है जो सभी दृष्टियो से सम्पन्न है। इसके भी अनेक विभाग हैं। पुरातत्व की दृष्टि से हम यहा धातुओ की मूर्तियो का अद्भुत सग्रह पायेंगे। दक्षिण भारतीय कासे की मूर्तियों का तो यहा अद्वितीय सग्रह है जो वौद्ध, शैव, वैष्णव धर्मो से सम्वद्ध हैं। नटराज की कास्य मूर्तियो के कुछ नमूने जो यहा हैं सारे ससार में प्रसिद्ध हैं। निजाम द्वारा १९३१ में स्थापित हैदरावाद का सग्रहालय विशेषकर हैदरावाद प्रदेश की खुदाइयो से प्राप्त अनेकानेक मूर्तियो तथा पुरातत्व वस्तुओ से सम्पन्न है। यहा ईरानी, मुगल, राजपूत और स्थानीय कलमो के चित्रो का भी विशाल सग्रह है, तथा अरवी फारसी की कुछ अमूल्य हस्तलिखित पोथिया हैं। दक्षिण भारत के प्रसिद्ध सग्रहालयो में एक वगलोर में है, जिसकी स्थापना १८६५ मे हुई थी। मूर्तियों, प्राक्-ऐतिहासिक हथियारो, मृत्तिका-पात्रो, ताम्रलेखो और प्राचीन लेखो की दृष्टि से यह वहुत सम्पन्न है। त्रावनकोर में त्रिवेन्द्रम का श्रीचित्रालयम् अपने प्राचीन तथा आधुनिक चित्रो के सग्रह के लिये प्रख्यात है।

मध्यप्रदेश में नागपुर के केन्द्रीय सग्रहालय में विविध सग्रह है। पुरातत्व विभाग में प्राक्ऐतिहासिक मृत्तिका-पात्र, मनके, कासे के हथियार आदि का अच्छा संग्रह है। यहा वौद्ध, जैन, ब्राह्मण मूर्ति कला के उदाहरणो के साथ हमें गोड मूर्तिकला के उदाहरण मिलेंगे।

वम्बई का प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम प्रख्यात है, जिसकी स्थापना १९०५ में हुई थी। इसका एक विशाल भवन है। सग्रह यहा का भी विविध है लेकिन इसके पुरातत्व और कला-सम्वन्धी विभाग पुष्ट हैं। कला विभाग में सर रतन

ताता, सर दोराव ताता और सर अकवर हैदरी के सग्रह यहा मिलेंगे। यहा भी भारत के अनेक स्थानो से प्राप्त ब्राह्मण, वौद्ध, जैन मूर्तियों तथा अन्य पुरातत्व सामग्री का अच्छा सग्र‍ है। मुगल कलम के चित्रो का सग्रह यहा की एक विशेषता है। वम्वई प्रदेश की चर्चा करते हुये हम पूना के इतिहास सशोधक मडल के सग्रह को नही भूल सकते जिसकी स्थापना १६१५ में हुई थी और जिसमें मराठा इतिहास की अमूल्य सामग्री सग्रहीत है और जहा हमे राग और ताल के चित्रो का, हस्तलिखित पोथियो का, मानचित्रो और सिक्को का भी अच्छा सग्रह मिलेगा। १६३० में स्थापित सतारा के सग्रहालय में अनेक ऐतिहासिक सामग्री एकत्र हुई है। यहा मराठी और फारसी हस्तलिखित पोथिया हैं, फरमान हैं, अग्रेजी के अनेक लेख है, सिक्के और चित्र हैं विशेपकर वीजापुर शैली के।

साची (भोपाल) के सग्रहालय में स्थानीय खुदाइयो में मिले मौर्य काल से लेकर वाद के पुरातत्वविषयक नमूने हैं। मध्यभारत में ग्वालियर के किले में स्थित प्रसिद्ध पुरातत्व सग्रह है। शुग, गुप्त और मध्यकालीन वस्तुयें विशेष रूप से हैं। इदौर में भी मूर्तियो, ताम्रपत्रो, ईंटो, मुद्राओ, सिक्को आदि का अच्छा सग्रह है। राजस्थान में जयपुर तथा जोधपुर के सग्रह वडे मूल्यवान हैं। यद्यपि अन्य स्थानो में भी सग्रह हैं। जयपुर में मुगल और राजपूत शैली के चित्रों का खासा सग्रह है। अजमेर का राजपूताना सग्रहालय भी प्रसिद्ध है। यहा ब्राह्मण, वौद्ध, जैन मूर्तियो के अतिरिक्त अनेक शिला लेख हैं जो प्रतिहारो, परमारों सोलकियो, सिसोदियो तथा चौहानो के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। वडौदा के राजकीय सग्रहालय तथा चवा के भूरीसिंह सग्रहालय के नाम मात्र लिये जा सकते हैं। वडौदा में चित्रो का अच्छा सग्रह है, चवा में उस प्रदेश के इतिहास की मूल्यवान सामग्री एकत्र है।

अव अपने देश की राजधानी दिल्ली के दो सग्रहालयो का परिचय देना शेष है। इनमें पहिला दिल्ली के किले में स्थित है, जिसे पुरातत्व विभाग अपने प्रबन्ध में रखता है। यहा मुगल चित्रों, हस्तलिपियों, फरमानों सनदो, मानचित्रों आदि का अच्छा सग्रह है और मुगल ढग से सजा एक विशेष कक्ष है। सेन्ट्रल एशियन ऐंटिक्विटीज म्यूजियम, जो किंग्सवे में है, १६२६ से जनता के लिये खुल गया है। यहा सर आरेल स्टाइन द्वारा लाए गये मध्य-एशियायी वौद्ध भित्ति-

चित्र है जो पूर्वी तुर्किस्तान से उचाड कर लाये गये थे। और सामग्री के साथ यहा लकडी, धातु, पत्थर, शीशा, सिट्टी आदि की अनेक मध्य-एशियाथी वस्तुयें हैं। नाल सिंघ, और उत्तरी बलूचिस्तान से प्राप्त मृतिका–पात्र तथा पुरातत्व से सम्वन्धित अन्य वस्तुयें भी एकत्र हुई है।

इस प्रकार हमारे देश में अनेक पुरातत्व सम्बन्धी सग्रहालय है जिनसे हमारा इतिहास रचा गया है और रचा जायेगा।

GIPD—HS—20 M of I & B—14-8-54—5,000